॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-04-21
प्रकाशन दिनांक = 05-04-21

अप्रैल २०२१

वर्ष ५० : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९७
विक्रम-संवत् : फाल्गुन-चैत्र २०७८
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२२

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- ☐ वेदोपदेश २
- ☐ वो तुम्हें मंदिर से भगाएं तुम उन्हें ३
- ☐ पुरुष की सोलह कलाएं ५
- ☐ फिर गूंजा २६ आयत का किस्सा ९
- ☐ वैदिक धर्म के अनुसार आचरण ११
- ☐ कहाँ से कहाँ पहुँची राम-गंगा ! १५
- ☐ काल सर्प योग एवं मङ्गली दोष २०
- ☐ स्मृतिशेष आचार्य ज्ञानेश्वर जी..... २३
- ☐ ईश्वर प्राप्ति का उपाय पतञ्जलि..... २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण - ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) - ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥

—ऋ० ४।२६।२॥

शब्दार्थ—**अहम्**=मैं **भूमिम्**=भूमि **आर्याय**=आर्य को **अददाम्**=देता हूँ, **अहम्**=मैं **दाशुषे**=दाता **मर्त्याय**=मनुष्य को **वृष्टिम्**=वृष्टि देता हूँ। **अहम्**=मैं ही **वावशानाः**=चाहने योग्य **अपः**=जलों को, सूक्ष्म तत्त्वों को **अनयम्**=चलाता हूँ, **देवासः**=देव, सृष्टि के तत्त्व **मम**=मेरे **केतम्+अनु**=संकेत के अनुकूल **आ+अयन्**=चलते हैं ।

व्याख्या—भगवान् आदेश करते हैं—मैंने भूमि आर्यों को दी है, परन्तु भूमि का बहुत भाग तो अनार्यों के पास है । 'ब्राह्मणग्रन्थों' में बहुत सुन्दर रीति से इस समस्या को सुलझाया गया है । वहाँ लिखा है—देवों और असुरों में भूमि के सम्बन्ध में झगड़ा हुआ। सारी भूमि पर असुरों ने अधिकार कर लिया । देवों ने यज्ञ को आगे किया और असुरों से कहा कि हमें यज्ञ के लिए भूमि दो । यज्ञ तो बहुत छोटा था । असुरों ने भूमि दे दी । बस फिर क्या था, यज्ञ बहुत बढ़ गया, सारी भूमि पर देवों का अधिकार हो गया । वहाँ लिखा है कि असुरों की हार का कारण था स्वार्थ और देवों की विजय का मूल था स्वार्थत्याग—**देवा अन्योऽन्यस्मिञ्जुह्वतश्चेरुः**[1]=देव अपने में हवन न करते थे, वरन् एक-दूसरे में होम करते हुए विचरते थे, खाते थे, अर्थात् देव यज्ञशील हैं। यज्ञ में प्रत्येक आहुति के साथ **'इदं न मम'** [यह मेरा नहीं] लगा है। यज्ञ करने वाले को वेद आर्य कहता है—**यजमानमार्यम्**—ऋग्वेद[2]। सार निकला, भगवान् ने भूमि स्वार्थत्यागियों को दी है, जिसमें जितनी स्वार्थत्याग की मात्रा होगी, उतना ही वह भूमि का अधिकारी होगा । इसी भाव को इसी मन्त्र के दूसरे चरण में स्पष्ट करके कहा है—

अहं वृष्टिं दाशेषु मर्त्याय=मैं दानी मनुष्य को वृष्टि देता हूँ । वेद दान पर बल देता है । अराति =कंजूस की वेद में बहुत निन्दा है । स्वार्थत्याग वैदिक धर्म का मर्म है ।

संस्कृत में जल को जीवन कहते हैं । भगवान् कहते हैं—**अहमपो अनयं वावशानाः**=मैं चाहने योग्य जलों को चलाता हूँ, अर्थात् जीवन की बागडोर भगवान् के हाथ में है। नचिकेता ने ठीक ही कहा था—**जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वम्**—कठो० १।१।२७। भगवान् ने जितना भोग निश्चय किया है, उतना ही जिएँगे । जीवन या जल की क्या कहते हो, सभी **'मम देवासो अनु केतमायन्'**=देव मेरे संकेत पर चलते हैं ।

सूर्य, चाँद, आग, हवा, पानी, ग्रह-उपग्रह, सृष्टि के सभी पदार्थ उसके नियम से बंधे चलते हैं । आँख रूप ही देखेगी, गन्ध नहीं सूंघ सकेगी। कान शब्द ही सुनेगा, रूप नहीं देखेगा, गन्ध नहीं सूंघेगा । उसका केत=संकेत ही ऐसा है ।

जब सभी उसके संकेत पर चलते हैं, तब आओ, हम भी उसके संकेत पर चलें । वेद से उसका संकेत जानें । ❑❑

१. शतपथ० ५।१।१।२ २. ऋ० १।१३०।८

वो तुम्हें मंदिर से भगाएं, तुम उन्हें मजार से भगाओ

–धर्मपाल आर्य

मस्जिद कमेटी का खास जरुरी एलान ये मस्जिद सुन्नी हनफी सहीहुल अकीदा लोगों की है हुजुर के फरमान सहाबा के तरीके गौसी ख्वाजा मरदूम पाक खुसुसून मसल के आला हजरत इमाम अहमद खां रजा बरेलवी के पैरोकार हैं । यहाँ पर देवबंदी वहाबी तबलीगी व दीगर बंद अकीदा लोग इस मस्जिद में ना आयें और अगर वह आते हैं तो नतीजे के जिम्मेदार वह खुद होंगे। ये बोर्ड उन वामपंथी मीडिया और मुसलमानों को पढ़ लेना चाहिए जो डासना के देवी मंदिर में मुसलमान के वर्जित प्रवेश को हेडलाइन बनाये बैठे हैं।

कई दिन से देश में नई समस्या खड़ी हो गयी कि डासना मंदिर के बाहर बोर्ड क्यों लगा है कि मुस्लिम मंदिर में ना आयें। डासना के मंदिर से पानी पीने के लिए पीटे गये मुस्लिम लड़के की खबर को विदेशी मीडिया ने, खासकर मुस्लिम देशों की मीडिया ने प्रमुखता से छापा है। पाकिस्तान के अंग्रेजी अखबार डॉन, बांग्लादेश के अंग्रेजी भाषा के दैनिक अखबार ढाका ट्रिब्यून ब्रिटेन के अखबार द मुस्लिम न्यूज, अरब के अल जरीरा और बी.बी.सी. समेत अन्य अखबारों ने इस खबर को ऐसे दिखाया मानों कोई बहुत बड़ा कांड हो गया । जबकि इस्लाम में सभी फिरके अपनी-अपनी मस्जिद में बाहर बोर्ड टांग कर बैठे हैं कि सुन्नी की मस्जिद में शिया ना आये। शिया की मस्जिद में सुन्नि ना घुसे। बरेलवी की मस्जिद में देवबंदी घुसे तो जान माल की खैर नहीं और देवबंदी की मस्जिद में अगर बरेलवी घुसे तो जलील कर देंगे।

ये बात हम किसी पूर्वाग्रह का शिकार होकर नहीं कह रहे हैं बल्कि उन लोगों के नयन चक्षु खोलना चाहते हैं जो मंदिर में मुसलमान के प्रवेश की पाबंदी को साम्प्रदायिक बता-बता कर टी.वी. चैनलों पर आंपा पीट रहे हैं। करेहपारा रतनपुर इस मस्जिद के बाहर बोर्ड लगा हुआ है कि सलातो वसल्लामो अले क या रसुल्लाह मसलके आला हजरत सुन्नी हनफी बरेलवी मिल्लत जामा मस्जिद करेहपारा रतनपुर। यह मस्जिद सुन्नी सहीहुल अकीदा मुसलमानों की है। यहाँ के नमाज पढने वालों का तरीका मसलके आला हजरत के तरीके से पढ़ते हैं। इस मसलक के खिलाफ करने वाले देवबंदी वहाबी कादयानी शिया जैसे बद अकीदों का इस मस्जिद में आना शख्त मना है। नीचे एड्रेस दिया गया है – मुस्लिम जमात जामा मस्जिद करेहपारा रतनपुर।

एक दूसरी जामा मस्जिद भी है। इन्होंने बाहर एक बड़ा साइन बोर्ड लगाया है कि मसलके आला हजरत अहले सुन्नत वल जमात जामा मस्जिद बालोद। ये लिखते हैं कि इस मस्जिद में देवबंदी वहाबी नज्दी तबलीगी जमात गुस्ताखे रसूल का आना सख्त मना है इंतेजामिया कमेटी बालोद। एक अन्य मस्जिद के बाहर लिखा है कि तमाम फिरका ए बातला मसलन देवबंदी वहाबी राफजी व गैर मुकलिल्दो का इस मस्जिद में आना सख्त मना है कमेटी मस्जिद खजूर वाली कब्रिस्तान अशरफ खां बरेली।

इसके अलावा हुसेनी मस्जिद सनावद वालों ने तो इस्लाम का अन्दरूनी काला चिट्ठा खोलकर बाहर ही रख दिया इन्होंने लिखा है कि यह मस्जिद आशिकाने रसूल सुन्नी हनफी चिस्ती मसलके आला हजरत व बुर्जग्रानें दिन के मानने वालों की है। यहाँ पर तमाम गुस्ताखे खुदा व रसूल का आना

सख्त मना है जैसे वहाबी देवबंदी तबलीगी जमाती गैर जमाती गैर मुक्क्लीद व अहले खबीस का आना सख्त सख्त सख्त मना है। अगर गलती से आ जाये तो जलील करके निकाला जायेगा । नीचे लिखा है – मिन जानिब तमाम आशिकाने रसूल व मुतवल्ली।

ये कोई एक दो जगह का किस्सा नहीं है। आप इनकी मस्जिदों के बाहर लगे ऐसे बोर्डों को पढ़ सकते हैं। एक और मस्जिद है जिसके बाहर लगा ये साइन बोर्ड इस्लाम के जातिवाद का कवर उतारकर फेंक रहा है। इस मस्जिद के बाहर बड़े अक्षरों में लिखा है – मसलके आला हजरत जिंदाबाद। खबरदार ये मस्जिद अहले सुन्नत वल जमायत की है। इस मस्जिद में वहाबी देवबंदी जमाती अहले हदीस तबलीगी जमातों व तमाम बद मजहबों यानि हिन्दू सिख इसाई का आना सख्त मना है। पकड़े जाने पर कार्रवाही की जाएगी जिसका जिम्मेदार वह खुद होगा।

केवल मस्जिद ही नहीं इनके शादी के कार्ड पर भी इनकी मानसिकता छापी जाती है। शेख सिराजुदीन और शबाना बेगम की शादी का एक कार्ड देखा जिस पर स्पेशल लिखा था कि देवबंदी वहाबी सुलह कुल्ली का आना सख्त मना है। जिसको ये बुरा लगे वह भी ना आये।

केवल शादी के कार्ड और मस्जिदें ही नहीं एक अल्लाह की बात करने वाले मुसलमान कब्रिस्तान में भी आपस में लट्ठ बजा रहे हैं और फिर भी शोर मचा रहे हैं कि डासना के देवी मंदिर के बाहर मुसलमानों को रोकने के लिए बोर्ड क्यों लटका दिया है।

कब्रिस्तान के हाल ये हैं कि सुन्नी शियाओं और अहमदिया कदयानियों के कब्रिस्तान में मुर्दे नहीं दफना सकते। कब्रिस्तान के बाहर भी ऐसे बोर्ड या दीवारों पर लिखा जाता है कि यह कब्रिस्तान सुन्नियों का है वहाबी देवबंदियों व अन्य फिरकों का दफनाना मना है, नहीं तो सख्त कार्रवाही की जाएगी। अब ये सख्त कार्रवाही क्या होती है पिछले दिनों उदयपुर के एक कब्रिस्तान में मय्यत दफनाने को लेकर हुए विवाद में यह सब सामने आया था। जब मरहूम मोहम्मद यूसुफ की लाश को कब्र से निकाला गया अपमानित किया गया और उनके पुत्र के घर उनकी लाश फेंक दी गयी थी। क्योंकि मोहम्मद यूसुफ उस फिरके से नहीं था जिस फिरके का यह कब्रिस्तान था।

यानि एक दूसरे की शादी में नहीं जा सकते एक दूसरे के कब्रिस्तानों से गड़े मुर्दे उखाड़ रहे हैं, मस्जिदों के बाहर बोर्ड लटकाए बैठे हैं कि किसे मस्जिद में आने देना है किसे नहीं। लेकिन समस्या ये है कि मंदिर के बाहर बोर्ड क्यों लगा दिया कि मुसलमान का प्रवेश वर्जित है।

समस्या यहाँ तक भी होती तो निपटारा हो जाता लेकिन जब अगर किसी मुसलमान को मंदिर में जाने दिया जाता है तो उसका क्या होता है दरअसल कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश के बागपत जिले के रंछाड गाँव का बाबू खान कुछ समय पहले मंदिर में गया और भगवान शिव का जलाभिषेक किया। लेकिन मुसलमानों को यह बात नागवार गुजरी और इसके दो दिन बाद जब बाबू खान मस्जिद गया तो उसे मस्जिद से ये कहकर बाहर फेंक दिया कि मुसलमान होकर मंदिर क्यों गया।

मसलन मंदिर में जाने दिया तो समस्या और नहीं जाने दिया तो समस्या। अब इस समस्या का ये हल हो सकता है कि अगर हिन्दू मुसलमानों को मंदिर में नहीं जाने देते तो भाई आप लोगों को एक सलाह है कि अपनी मजारों के बाहर बोर्ड लटका दो कि यह मजारें मुसलमानों की हैं और हिन्दुओं का आना सख्त मना है। अगर कोई फिर भी आता है तो उसका डासना वाले आसिफ जैसा व्यवहार करो, विडियो डालो और बताओ कि ये मना करने के बावजूद भी मजार पर आया था। ❑❑

पुरुष की सोलह कलाएं

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

यजुर्वेद में एक मन्त्र आता है जिसमे परमात्मा को 'षोडशी' कहा गया है । इसकी व्याख्या में महर्षि दयानन्द ने परमात्मा रूपी पुरुष को १६ कलाओं वाला बताकर, प्रश्नोपनिषद् में पढ़ी गई सोलह कलाओं को गिनाया है । ये कलाएं कुछ असम्बद्ध-सी लगती हैं और इनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता । छान्दोग्य में भी इनकी कुछ चर्चा उपलब्ध होती है। उस पर विचार करते हुए मुझे यह विषय कुछ स्पष्ट हुआ । उसी विचार को मैं इस लेख में निरूपित कर रही हूँ ।

पहले तो यह जान लेना आवश्यक है कि 'कला' का अर्थ यहाँ ललित कलाएं नहीं हैं, अपितु 'अंश' है, जैसे चन्द्रमा एक-एक कला से बढ़ता व कम होता है । अब, यजुर्वेद का उपरिलिखित मन्त्र देखते हैं–

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव
य आबभूव भूवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सँरराणस्-
त्रीणि ज्योती ँषि सचते स षोडशी ॥ **॥ यजुर्वेदः ३२।५॥**

अर्थात् जिस प्रजापति से पूर्व (इस जगत् में) कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, जिसने (संसार के) सारे लोकों को विशेष रूप से उत्पन्न किया, (जिन लोकों पर) विभिन्न प्रजाओं के साथ रमता हुआ, वह षोडशी तीन ज्योतियों (द्युलोक में आदित्य, अन्तरिक्षलोक में विद्युत् और पृथिवीलोक में अग्नि) को संयुक्त करता है ।

यहाँ अवश्य ही 'प्रजापति' परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि वही संसार में प्रथम चेतन होकर उसका सृजन प्रारम्भ करता है । 'षोडशी' उस प्रजापति का विश्लेषण प्रतीत हो रहा है, परन्तु वेदों में विभक्तियों का कुछ अदल-बदल हो जाता है, इसलिए इस विषय को और परखते हैं ।

इन सोलह कलाओं की गणना मैंने केवल प्रश्नोपनिषद् में पाई है । स्वामी जी ने भी वहीं दी हुई कलाओं को अपने यजुर्वेद-भाष्य में पढ़ा है । सो, उस प्रसंग को हम अब विस्तार से दखते हैं । महर्षि पिप्लाद के आश्रम में आए हुए छः जिज्ञासुओं में से छठे सुकेशा भारद्वाज ने महर्षि से पूछा कि सोलह कला पुरुष कौन है, तो वे बोले–

तस्मै स होवाच । इहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषः यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति।
॥ प्रश्नोपनिषद् ६।२॥

अर्थात् उस सुकेशा से वे पिप्लाद बोले, "हे प्रिय शिष्य) ! यहाँ ही शरीर के अन्दर वह पुरुष है जिसमें इन १६ कलाओं का प्रादुर्भाव होता है । आगे–

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यमीति । **॥ प्रश्नोपनिषद् ६।३॥**

अर्थात् उस (शरीरस्थ पुरुष) ने सोचा, "किसके (शरीर से) निकल जाने पर मैं निकलूंगा, और किसके (शरीर में) प्रतिष्ठित होने पर प्रतिष्ठित होऊंगा?" क्योंकि परमात्मा कभी कहीं से न निकलता है, न प्रवेश करता है, यहाँ परमात्मा के मुख से जीवात्मा के विषय में कहा जा रहा है । यह सोचकर–

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोकाः लोकेषु च नाम च । **॥ प्रश्नोपनिषद् ६।४॥**

उस (शरीरस्थ पुरुष) ने प्राण का सृजन किया; प्राणों से श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति (तेज), जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन और अन्न बनाए; अन्न से वीर्य, तप, अनेक मन्त्र, कर्म और लोक; और उन लोकों में नाम उत्पन्न किए ।

पुनः प्राणादि के सृजन से स्पष्ट है कि परमात्मा की चर्चा है, जीवात्मा की नहीं, क्योंकि जीवात्मा तो आकाश, वायु, आदि को रचने की क्षमता नहीं रखता; परन्तु यह भी स्पष्ट है कि कलाएं उत्पन्न की गईं । इसलिए ये शरीर की हैं, न तो परमात्मा की, न जीवात्मा की । इनमें प्राण, पञ्च महाभूत, इन्द्रियां, मन, अन्न, वीर्य और लोक तो प्राकृतिक हैं, परन्तु अन्य अभी स्पष्ट नहीं हुए। सो आगे देखते हैं–

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते । स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ **॥ प्रश्नोपनिषद् ६।५॥**

अर्थात् जैसे ये समुद्र की ओर बहती हुई नदियां समुद्र को प्राप्त करके विलीन हो जाती हैं, उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं, और 'समुद्र' बस ऐसे ही पुकारा जाता है, वैसे ही इस चारों ओर से देखने वाले की १६ कलाएं पुरुष के आधार वाली हैं और पुरुष को प्राप्त करके अस्त हो जाती हैं और इनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं– 'पुरुष' बस इतना कहा जाता है । वह यह बिना कला वाला अमृत हो जाता है, (उस विषय में अगली कण्डिका में दिया) यह उपदेश है ।

अब यहाँ तो 'नाम और रूप मिट जाना, अमृत हो जाना' केवल जीवात्मा में ही सम्भव है। सो, यहाँ पुरुष से जीवात्मा लक्षित है, यह मानना पड़ेगा । लेकिन ठहरिए ! वस्तुतः, यहाँ दोनों परमात्मा और जीवात्मा की चर्चा हो सकती है–परमात्मा का 'शरीर' यह संसार है, जिसके विभिन्न पदार्थों के नाम और रूप हैं और वे प्रलय के समय परमात्मा-पुरुष में ही विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार जीवात्मा अपने शुद्ध स्वरूप को देखकर मोक्ष का भागी हो जाता है, और इस शरीर में प्राप्त अपने नाम और रूप को खो देता है । परन्तु जब हम 'तप', 'मन्त्र' और कर्म कलाएं पढ़ते हैं,तो इन्हें परमेश्वर में घटाने में किंचित् कठिनाई होती है, जैसा कि मैं आगे दिखाऊंगी ।

अगली कण्डिका कहती है–

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति । **॥ प्रश्नोपनिषद् ६।६॥**

अर्थात् जिसमें कलाएं इस प्रकार प्रतिष्ठित हैं, जैसे कि रथ के चक्र की नाभि में अरे अर्पित

होते हैं, उस जानने योग्य पुरुष को तुम जानो, जिससे कि तुमको मृत्यु फिर पीड़ित न करे ।

कलाओं को शरीर का अंश मानें तो यहाँ जीवात्मा का ग्रहण करना ही सम्यक् होगा, क्योंकि परमात्मा शरीर से जुड़ता नहीं । इस सब से अब यह ज्ञात होने लगा कि कलाएं वस्तुतः प्राणी-शरीर की होती हैं और उससे सम्बद्ध पुरुष का कथन मुख्य रूप से जीवात्मा के लिए होता है, परन्तु इनका स्रष्टा और अधिष्ठाता परमेश्वर होने के कारण, परमेश्वर का भी कहीं-कहीं अर्थ ग्रहण करना होता है । इस निष्कर्ष की पुष्टि में छान्दोग्योपनिषद् का एक प्रकरण देखते हैं, जहाँ पर कला की चर्चा है ।

छान्दोग्य में एक प्रसंग वर्णित है, जिसमें पिता उद्दालक अपने बेटे श्वेतकेतु को उपदेश देते हैं । वहाँ वे कहते हैं :

षोडशकलः सोम्य पुरुषः ...॥ ॥ छान्दोग्योपनिषद् ६।७।१॥

अर्थात् हे प्रिय बेटे ! पुरुष सोलह कलाओं वाला होता है । यहाँ जिस पुरुष का वर्णन किया गया है, वह जीवात्मा ही है । आगे वे यह दिखाने के लिए कि प्राण जलमय होता है, श्वेतकेतु से कहते हैं कि पन्द्रह दिन तुम भोजन मत करो, परन्तु जी भर कर पानी पीयो । जब ऐसा ही करके श्वेतकेतु १५ दिवस बाद आता है, तब पूछने पर वह अपने चिर सीखे हुए वेदमन्त्र नहीं दोहरा पाता है । उद्दालक उसे बताते हैं कि भोजन न करने के कारण, श्वेतकेतु की जलरूपी केवल एक कला रह गई है, जिससे उसके प्राण तो चल रहे हैं, परन्तु अन्य कलाएं क्षीण पड़ गई हैं । वे श्वेतकेतु को भोजन करने को कहते हैं । भोजन के बाद श्वेतकेतु पुनः वेदमन्त्र याद करने में और उच्चारण करने में समर्थ हो जाता है । तब उद्दालक कहते हैं–

एवं सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत । सान्नेनोपसमाहित प्राजवालीत् तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयँ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ॥ छान्दोग्योपनिषद् ६।७।६॥

अर्थात् हे सोम्य ! इस प्रकार तेरी १६ कलाओं में से एक ही कला (जल) बच रही थी । वह अन्न से सुलग गई और (पूर्व कण्डिका से) उसके अंगारे ने अन्य सभी कलाएं सुलगा दीं और तू वेदर्चाओं को बोलने लगा । सो, सोम्य, मन अन्नमय है, प्राण जलमय हैं, वाणी तेजामय है । इस उपदेश से श्वेतकेतु समझ गया ।

यहाँ पुनः यह स्पष्ट हो जाता है कि कलाएं शरीर की अंश होती हैं । दूसरे, यहाँ परमात्मा का प्रकरण ही नहीं है, और 'पुरुष' से जीवात्मा ही अभिप्रेत है । फिर, क्योंकि शरीर की कलाएं तभी होती हैं, जब शरीर जीवित होता है, और शरीर जीवित तभी होता है जब उसमें जीवात्मा विराजमान होता है, इससे हम कह सकते हैं कि जीवात्मा-पुरुष ही १६ कला वाला है–वही इन्हें शरीर में उत्पन्न करता है । फिर भी, क्योंकि प्राणों को देने और लेने और जीवात्मा को शरीर में स्थापित करने का अधिकार परमात्मा का ही है, इसलिए परमात्मा को भी 'षोडशी' कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

इतना सब स्पष्ट हो जाने पर, अब हम कलाओं को देखते हैं । प्राण, आकाश, वायु, ज्योति (तेज), जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, और वीर्य तो प्रकृति के विकार-रूप में शरीर के अवयव

प्रसिद्ध ही हैं; बचते हैं श्रद्धा, तप, अनेक मन्त्र कर्म, लोक और नाम । श्रद्धा का यौगिक अर्थ है– श्रत् = सत्य को धारण करने वाली । सो, यह निश्चयात्मक बुद्धि का विशेषण सम्भव है, क्योंकि इन्द्रियों से ग्रहण किए गए विषय मन से छन कर एक विषय बुद्धि को प्राप्त होता है, जिसको वह समझने का कार्य करती है–क्या झूठ है, क्या सच है–इसका निर्णय करके उसको जीवात्मा को देती है । इस प्रकार श्रद्धा या इन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञान बुद्धि में ही धारण किया जाता है । सांख्यदर्शन भी बताता है कि प्रकृति से प्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है, इससे भी इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है ।

एक बार अन्न से वीर्य = सामर्थ्य जीव, विशेषकर मनुष्य, में उत्पन्न हो जाता है, तब वह ज्ञानार्जन में प्रवृत्त हो सकता है । यह ज्ञानार्जन क्रिया 'तप' से अभिप्रेत है, और ज्ञान 'मन्त्र' से । जैसा मैंने पूर्व भी बताया है, ज्ञानार्जन कर्म की श्रेणी में नहीं आता क्योंकि उसका कोई भोगने-योग्य फल नहीं होता, इसलिए 'कर्म' नामक कला यहाँ भी भिन्न है । ज्ञानार्जन प्रायः कष्टप्रद होता है, व्याकरणादि तो विष-तुल्य लगने वाले कहे गए हैं । इसलिए ज्ञानार्जन को तप कहना अतिश्योक्ति न होगा । 'मन्त्र' पदमन् धातु से बना है जिसके मनन अर्थ हैं । मनन द्वारा हम अपनी देखी-सुनी शिक्षा को ज्ञान में बदलकर बुद्धि में निहित करते हैं । यह वेद, गणित, आदि, गूढ़ ज्ञान ही अनेक मन्त्र हैं, जो ज्ञान हमें इन्द्रियां नहीं प्राप्त करातीं, परन्तु उनके लिए तप करना पड़ता है । ज्ञान व संस्कार के अनुसार हम अनेकों कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, जो कि शरीर के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं । यदि परमात्मा में हम इन अर्थों को घटाने का प्रयास करें, तो परमात्मा के विषय में अनेकत्र आया है कि उसने तप करके संसार बनाया । फिर मन्त्र से हम उसको वेदों का रचियता के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु कर्म? तप में ही हमने उसकी क्रियाएं ग्रहण कर ली थीं, तो अब कर्म में किसे गिने? कुछ अन्य उल्लेखों के अनुसार, हम संसार के संचालन, जीवों के कर्मों के फल देने, आदि, उसके कार्यों को कर्म के अन्तर्गत गिन सकते हैं। या फिर पुनः, जीव के तप, मन्त्र और कर्मों का अधिष्ठाता होने के कारण, परमेश्वर में भी हम इन कलाओं का आरोप कर सकते हैं ।

अब 'लोक' । जीव की योनियों को कई बार 'लोक' कहा जाता है । यहाँ भी यह अर्थ बिल्कुल सही बैठता है, क्योंकि जीव की अनेक योनियां होती हैं, और इन योनियों को प्राप्त करके ही वह योनि के अनुसार भाषा में प्रवृत्त होता है । जैसे मैंने अपने पुराने लेख 'सृष्टि में नाम और रूप का महत्त्व' में दर्शाया था, 'नाम' से भाषा अभिप्रेत होती है । विभिन्न जीव-योनियों की अपनी-अपनी भाषा होती हैं, वे सब यहाँ 'नाम' पद से कही गई हैं ।

केवल एक कठिनाई मुझे यहाँ प्रतीत होती हे कि, इस व्याख्या के अनुसार, तप, मन्त्र और कर्म भी लोक पर निर्भर हैं, सो उन्हें भी लोकों की उत्पत्ति के उपरान्त कहना चाहिए था, उनसे पहले नहीं । सम्भव है कि ऋषि ने भाषा का विशेष महत्त्व बताने के लिए उसको पूर्णतया अलग रखा हो, और ज्ञान का सबसे सामर्थ्यशील स्रोत होने के कारण उसको सबसे अन्त में गिना हो । तथापि इस प्राकर समझने से जीव, विशेषकर मनुष्य, के विभिन्न अंश सुन्दरता से प्रकाशित हो जाते हैं।

मेरे अध्ययन में कहीं भी पुरुष की सोलह कलाओं की व्याख्या पूर्णतया नहीं प्राप्त होती । प्रश्न और छान्दोग्य उपनिषद् के भागों से हम कुछ ऊहा कर पाते हैं । उपर्युक्त प्राकर से जानने से इन कलाओं का बहुत दूर तक स्पष्टीकरण हो जाता है, परन्तु कुछ अंशों के लिए और अधिक प्रमाणों की अपेक्षा है। ❑❑

फिर गूंजा 26 आयत का किस्सा

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

साल था 1963 जर्मनी के एक लेखक थे कर्ट फिस्च्लर। इन्होंने एक किताब लिखी, जिसे आयशा बैरी एंड रॉकलिफ पब्लिकेशन ने इसे प्रकाशित किया। ये पुस्तक इस्लामी नबी की एक पत्नी आयशा के ऊपर लिखी गई थी। हालाँकि इसका असली वर्जन जर्मन भाषा में था। किताब का पूरा नाम था आयशा मुहम्मद की सबसे पसंदीदा बीवी। जैसे ही यह पुस्तक बाजार में आई इस पर बहस हुई कि ये मुस्लिमों की भावनाओं को आहत करने वाली किताब है। मुहम्मद की पत्नी आयशा की कम उम्र होने की बात पर काफी विवाद पहले भी हुए हैं। इस किताब को बैन किया गया और इसके आयात पर भी पाबंदी लगा दी गयी।

आयशा पुस्तक को बैन इसलिए किया गया क्योंकि इससे उनकी भावनाएं आहत हुई थीं, भावनाएं यानि इनके मन की एक धारणा जिसे आस्था से दिन में पांच बार महीन में 150 बार और साल में 1825 बार मजबूत किया जाता है जिसमें शुक्रवार को स्पेशल डोज दी जाती है, वो भावना आहत हो गयी। इतने ही ग्रैंड लेवल का एग्रेशन होता है मुस्लिम समाज में। जहां कहीं भी इस्लाम का मसला आ जाता है, भावुकता के नाम पर हिंसक हो जाते हैं, अब हिंसक ना हो इसके लिए अब शिया वक्फ बोर्ड के पूर्व चेयरमैन वसीम रिजवी ने कुरान की 26 आयतों को हटाने से संबंधित एक जनहित याचिका सुप्रीम कोर्ट में दाखिल की है। इसके साथ ही रिजवी ने कुछ आयतों को आतंकवाद को बढ़ावा देने वाला बताया है। उनका दावा है कि ये आयतें कुरान में बाद में शामिल की गई हैं। वसीम रिजवी के इस कदम से मुस्लिम समाज का भावुकता के नाम पर गुस्सा भड़क गया है, कोई एक राहत मोलाई कोमी एकता संगठन है उसकी ओर से उसके पूर्व अध्यक्ष अमीरुल हसन ने वसीम रिजवी का सिर काटकर लाने वाले को 11 लाख रुपए का इनाम देने का ऐलान किया है।

यानि आयतें ना हटाये जाने के विरोध में मुस्लिम समाज का एक बड़ा हिस्सा खड़ा हो गया है, ऐसे में सवाल उठ जाता है कि ये आयतें क्या हैं और इनसे इन लोगों को क्या लाभ है। पहले आयतें सुन लीजिये, हालाँकि इन आयतों को बोलने का एक किस्म से पेटेंट मौलाना लिए बैठे हैं वो बोले तो इस्लाम का प्रचार अगर कोई उनके अलावा इनकी व्याख्या करने की कोशिश करें तो भावना आहत हो जाती हैं और जब जब भावना आहत होती है तो फिर अमीरुल हसन खड़ा होकर वसीम रिजवी जैसे उदार मुसलमान का सिर काटकर लाने वाले को 11 लाख रुपए का इनाम देने का ऐलान कर देता है।

पर जब इन आयतों को देखते हैं तो सवाल खड़ा होता है कि आज के युग में इन आयतों का क्या रोल है या इनकी क्या और किसे जरूरत है? जैसे एक आयत में लिखा है कि फिर, जब हुरमत (रमजान) के महीने बीत जाऐं तो मुश्रिकों को जहाँ–कहीं पाओ कत्ल करो और पकड़ो और उन्हें घेरो और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो फिर यदि वे तौबा कर लें नमाज कायम करें और, जकात दें तो उनका मार्ग छोड़ दो। नि:संदेह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है। एक आयत है – हे ईमान लाने वालो ! मुश्रिक यानि मूर्तिपूजक नापाक हैं। इसके अलावा एक और आयत है – नि:संदेह काफिर तुम्हारे खुले

दुश्मन हैं। यही नहीं कुछ और भी आयत हैं । जैसे–हे ईमान' लाने वालो ! (मुसलमानो) उन काफिरों से लड़ो जो तुम्हारे आस पास हैं और चाहिए कि वे तुममें सख्ती पायें ।

आगे देखें तो एक और भी आयत है जो कहती है कि जिन लोगों ने हमारी आयतों का इन्कार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे, जब उनकी खालें पक जाएंगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे यातना का रसास्वादन कर लें। मसलन ऐसी-ऐसी करीब 24 से 26 आयतें हैं जिन्हें पढ़कर कोई भी इन्सान अपने मूल स्वभाव से अलग हटकर हिंसक हो सकता है या वो हिंसा कर सकता है । शायद इसी कारण काइरो विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर हसन हनाफी ने एक बार इसे इस प्रकार कहा था कि मुसलमानों की नजर में कुरान एक सुपर मार्केट है जहाँ से जिसे जो चाहिये वह उठा लेता है और जो नहीं चाहिये वह छोड़ देता है। आतंकी संगठन भी यहीं से शिक्षा लेते हैं और सूफी भी वहाबी भी इसी से सीखते हैं और शिया भी।

शायद यही कारण है कि पिछले दिनों चाइना ने अपने देश के मुसलमानों को अपनी नमाज की चटाई और कुरान की प्रतियां सौंपने का आदेश दिया था। डेली मेल के मुताबिक, चेतावनी दी गई थी कि अगर बाद में चटाई और कुरान पाई गई तो गंभीर सजा दी जाएगी। इससे पहले शिनजियांग के अधिकारियों ने पांच साल पहले प्रकाशित हुई सभी कुरानों को हटाना शुरू कर दिया था, जिनमें इन 26 आयतों को उग्रवादी सामग्री बताया था।

यही नहीं साल 2012 में तालिबान लड़ाकों द्वारा अफगानिस्तान में हर रोज मासूम लोगों की हत्या से दु:खी होकर अफगानिस्तान और विदेशी सैन्य बलों की ओर से कथित तौर पर कुरान की प्रतियां जलाई गयी थीं। उनका दावा था कि यही वो आयतें है जो लोगों को हिंसा करने के लिए उकसा रही हैं। हालाँकि इसके बाद वहां बड़े तौर पर विरोध प्रदर्शन का दौर चला था। हालाँकि कुछ समय पहले अखिल भारत हिन्दू महासभा के तत्कालीन उपप्रधान इन्द्रसेन शर्मा जी ने कुरान की इन आयतों के पम्पलेट बटवाए थे, तब एक मुस्लिम बंधू ने उनके खिलाफ कोर्ट में याचिका डाल दी, तब उनका जवाब था कि जैसे आयत है कि फिर, जब हराम के महीने बीत जाएं तो मुशरिकों यानि मूर्ति की पूजा करने वालों को जहाँ कहीं पाओ कत्ल करो, और पकड़ो नि:संदेह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है।

मसलन जो हिंसक नहीं है हमलावर नहीं है उसको उकसाना। उसके बाद लिख दिया नि:संदेह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है, तो क्या पहले अल्लाह कत्ल करवाता है फिर दयावान और क्षमाशील भी बन जाता है? अब जो दयावान है वह हिंसक नहीं हो सकता और जो हिंसा के लिए उकसाता है वह कैसे दयावान हो सकता है? ये सवाल भी आधुनिक समाज में खड़ा होता है।

दरअसल अगर देखा जाये तो छठी सातवीं सदी में अरब में कबीलाई समाज था, जिसमें रहने वाले लोगों के अपने रीति रिवाज थे। पढ़े लिखे लोग नहीं थे कबीलों में रहते थे अधिकांश लूटपाट का कार्य था। अचानक वहां इस्लाम के राजनीतिक विचारों को धार्मिकता का जामा पहनाकर कुरान के नियम इन कबिलाई समाज को संचालित करने लगे। यह रहस्य भी किसी से छिपा नहीं है कि इन तरीकों को थोपने या अपनाने के लिए हिंसा का भी इस्तेमाल किया जैसे कि वर्तमान में तालिबान, अल-शबाब, बोको हरम, इस्लामिक स्टेट समेत अन्य कट्टर आतंकी इस्लामिक संगठन इसी सातवीं शताब्दी के इस्लाम को आधुनिक दुनिया के ऊपर थोपने में हिंसा का रास्ता अपनाने से नहीं चूक रहे हैं। ❑❑

॥ ओ३म् ॥

वैदिक धर्म के अनुसार आचरण बनाकर जीवन को सफल बनायें

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : ०९४१२९८५१२१)

महाभारत के बाद वैदिक धर्म का सत्यस्वरूप विलुप्त हो गया था और इसमें अनेक अन्धविश्वास, पाखण्ड एवं मिथ्या परम्परायें सम्मिलित हो गई थीं जिससे आर्य जाति का नानाविध पतन व पराभव हुआ। ऋषि दयानन्द ने वेदों का पुनरुद्धार करने सहित वेद प्रचार करते हुए आर्यसमाज की स्थापना कर वैदिक धर्म को देश-देशान्तर में प्रचारित व प्रसारित करने का अभिनन्दनीय कार्य किया। इसके लिए हम ऋषि दयानन्द, उनके गुरु स्वामी विरजानन्द, स्वामी दयानन्द के संन्यास गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी, स्वामी जी के योग-गुरुओं सहित स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, भाई परमानन्द सहित उनके अब तक हुए सभी अनुयायियों को सादर नमन करते हैं। ऋषि दयानन्द को सन् १८३९ की शिवरात्रि को बोध हुआ था, तब लोगों के पास सच्चे शिव के सत्यस्वरूप तथा उसकी प्राप्ति कैसे होती है, आदि विषयों का ज्ञान नहीं था। मृत्यु क्यों होती है, मृत्यु पर क्या विजय पाई जा सकती है या नहीं, पाई जा सकती है तो कैसे और यदि नहीं पाई जा सकती है तो क्यों, इन प्रश्नों के उत्तर भी किसी के पास नहीं थे। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने को अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर ऋषि दयानन्द ने अपने माता-पिता व परिवार सहित अपनी जन्म भूमि टंकारा का त्याग किया था और अहर्निश अपने उद्देश्य के प्रति सजग रहकर उसे पूरा करने के लिये तत्पर व गतिशील रहे थे। ऋषि ने अपने तप व पुरुषार्थ और साधना से न केवल इन प्रश्नों के उत्तर व समाधान प्रदान किये अपितु इस सृष्टि के अधिकांश अन्य रहस्यों का अनावरण भी किया था। ऋषि का सौभाग्य था कि उन्हें स्वामी विरजानन्द जी जैसे अपूर्व आचार्य मिले थे। ऋषि दयानन्द के गुरु विरजानन्द जी को गुरु दक्षिणा में अपने शिष्य से किसी भौतिक पदार्थ की अपेक्षा नहीं थी अपितु वह चाहते थे कि ऋषि दयानन्द वेदज्ञान को जन जन तक पहुंचायें, इसका परामर्श व प्रेरणा ही उन्होंने दयानन्द जी को की थी। ऋषि दयानन्द ने जिस ज्ञान प्राप्ति के लिए अपने माता-पिता व घर को छोड़ कर वन, उपवन, पर्वत व स्थान-स्थान की खाक छानी थी, वह उसे कर चुके थे। ईश्वर का साक्षात्कार भी उन्होंने किया था। कोई मनुष्य अपने जीवन में वेदों का अधिकतम जो ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वह ऋषि दयानन्द प्राप्त कर चुके थे। ऋषि के प्रयत्नों से देश व संसार को पंचमहायज्ञविधि, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, ऋग्वेद-यजुर्वेदभाष्य, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि, पूना-प्रवचन आदि ज्ञान-सम्पदा प्राप्त हुई। हमारा सौभाग्य है कि हम ईश्वर, जीवात्मा, चराचर जगत, मनुष्य के कर्तव्य, जीवात्मा का लक्ष्य व उसकी प्राप्ति के साधनों आदि को ऋषि प्रदत्त सत्य-ज्ञान के अनुरूप जानते हैं। हम आश्वस्त हैं कि मृत्यु के बाद हमारा

पुनर्जन्म होगा। हम मोक्ष के लिये भी पुरुषार्थ कर सकते हैं। किसी भी ईश्वरोपासक एवं पुरुषार्थी मनुष्य का मोक्ष हो सकता है और यदि नहीं होगा तो उसका पुनर्जन्म अवश्य श्रेष्ठ व उत्तम होगा। हम पुनर्जन्म लेकर मानव व देव बनेंगे और भावी जन्मों में मोक्षगामी बनकर व ईश्वर का साक्षात्कार कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। यदि मोक्ष प्राप्त न भी कर सके तो हम सच्चे मनुष्य व देव बनकर तो मनुष्यता व प्राणीमात्र का कल्याण करने का कार्य कर ही सकते हैं जैसा कि ऋषि दयानन्द व उनके अनेक प्रमुख अनुयायियों ने किया है।

ऋषि दयानन्द ने बोध को प्राप्त होने के बाद सच्चे शिव व मृत्यु की औषधि की खोज की। वेदाध्ययन, वेदाचरण, ईश्वरोपासना, योग, ध्यान, समाधि, सत्याचरण, अपरिग्रह, सात्विक जीवन, परोपकार के कार्य आदि को धारण किया। उन्होंने संसार से अविद्या को दूर करने और विद्या का प्रकाश करने के लिये वेद प्रचार किया। असत्य मान्यताओं का खण्डन तथा सत्य मान्यताओं की स्थापना के लिये जीवन का एक-एक पल व्यतीत किया। मनुष्यों को मनुष्य के कर्तव्यों से परिचित कराया। पंच-महायज्ञों के विधान से परिचित कराया व उनकी विधि बनाकर हमें प्रदान की। उन्होंने ईश्वरोपासना, पंचमहायज्ञों तथा परोपकार व दान आदि के कामों को तर्क व युक्तियों से पुष्ट किया। हमें बताया कि जो मनुष्य ईश्वरोपासना नहीं करता वह ईश्वर के उपकारों के लिए उसका धन्यवाद न करने के कारण कृतघ्न होता है। जो अग्निहोत्र यज्ञ नहीं करता वह वायु, जल, पृथिवी, आकाश आदि में प्रदूषण करने के कारण ईश्वर व अन्य देशवासियों का अपराधी होता है। यज्ञ न करने से मनुष्य को पाप लगता है जिसका परिणाम दुःख होता है। माता-पिता के भी सन्तानों पर असंख्य उपकार होते हैं। उनकी आज्ञा पालन, वृद्धावस्था में उनका पालन व पोषण तथा उनकी आत्माओं को सन्तुष्ट रखना सभी सन्तानों का कर्तव्य व धर्म होता है। जो ऐसा करते हैं वह प्रशंसनीय हैं और जो नहीं करते वह निन्दनीय हैं। अतिथि विद्वानों को कहते हैं जो अपने किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं अपितु अपने कर्तव्य, समाज तथा देश का हित करने के लिये स्थान-स्थान पर विचरण करके अविद्या का नाश, विद्या की वृद्धि और लोगों के दुःखों का हरण करते हैं। ऐसे अतिथियों की मन, वचन व कर्म से सेवा करना समाज के सभी मनुष्यों का कर्तव्य होता है। ऐसा करने से मनुष्य ज्ञान व सामाजिक दृष्टि से उन्नति करता है। देश व समाज उन्नत व सुदृण होते हैं। ऋषि दयानन्द के जीवन में यह सभी गुण पाये जाते थे। इसी प्रकार से परमात्मा के बनाये पशु व पक्षियों सहित सभी प्रकार के प्राणियों व कीट-पतंगों के प्रति भी दया व करुणा का भाव रखते हुए उनके पोषण व जीवनयापन में सभी मनुष्यों को सहायक बनना चाहिये। ऐसा करके ही हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी होते हैं।

ऋषि दयानन्द के समय में हमारा समाज अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों से ग्रस्त था। ऋषि ने सभी सामाजिक कुरीतियों व परम्पराओं का तर्क, युक्ति सहित वेद के प्रमाणों से खण्डन किया। अशिक्षा को उन्होंने मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु बताया। उन्होंने शिक्षा को मनुष्य का अधिकार व प्रजा को वैदिक शिक्षा प्रदान कराना राजा का कर्तव्य बताया। ऋषि के अनुसार वह माता-पिता दण्डनीय होने चाहिये जो अपने बच्चों को राज्य की ओर से संचालित निःशुल्क गुरुकुलों व पाठशालाओं में पढ़ने के लिये नहीं भेजते। ऋषि दयानन्द

ने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन की महिमा को भी रेखांकित किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य से ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग दिखाया। ब्रह्मचर्य विषयक सभी भ्रमों को उन्होंने दूर किया। एक गृहस्थी जो संयम एवं नियमों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, वह भी ब्रह्मचारी होता है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन व आचरण से शिक्षा दी कि प्रत्येक मनुष्य को प्रातः ब्रह्म-मुहुर्त अर्थात् ४.०० बजे जाग जाना चाहिये। वेद मन्त्रों से ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। शौच आदि से निवृत्त होकर सन्ध्या एवं यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये। सात्विक व शाकाहारी भोजन करना चाहिये। शरीर में विकार उत्पन्न करने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। दुग्ध, घृत, मक्खन, फल सहित शुद्ध अन्न का सेवन करना चाहिये। आलस्य का त्याग कर पुरुषार्थी होना चाहिये। महत्वाकांक्षी न बन कर देश व समाज के हितों का ध्यान रखते हुए जीवनयापन करना चाहिये। मनुष्य को ईश्वरभक्त एवं देशभक्त होना चाहिये। उसे किसी प्रकार का भेदभाव, अन्याय व शोषण किसी के प्रति नहीं करना चाहिये। पिछड़े, दलितों व पात्र लोगों को शिक्षा व सहायता देकर ऊपर उठाना चाहिये। सबको सदाचार व वेद की मान्यताओं से परिचित कराना चाहिये और अविद्या का खण्डन निर्भीकता से करना चाहिये। समाज में यदि अविद्या होगी तो इससे सभी को दुःख प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द ने यह भी बताया कि वेद से इतर जितने भी मत-मतान्तर हैं उन सबमें अविद्या विद्यमान है। यह अविद्या दूर होनी चाहिये। इसके लिये उन्होंने न केवल सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्ध के चार समुल्लास लिखे अपितु अपने जीवन में उपदेश व व्याख्यानों के माध्यम से प्रचार करते हुए भी मत-मतान्तरों की अविद्या व असत्य का पुरजोर खण्डन किया। ऋषि दयानन्द ने हमें इतना कुछ दिया है कि हम उसे सम्भाल पाने में असमर्थ हैं। हम पुरुषार्थ करें तो वेदों के विद्वान व ऋषि तक बन सकते हैं। इसके लिये ऋषि दयानन्द ने हमें सभी साधनों से परिचित कराया है व सभी साधन उपलब्ध कराये हैं।

ऋषि दयानन्द के समय में हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम था। अंग्रेजों से पूर्व देश के कुछ भाग मुस्लिम शासकों के पराधीन रहे। इन सभी ने हमारे पूर्वजों पर अमानवीय अनेक जघन्य अपराध किये। हमें इनसे शिक्षा लेकर अपनी उन सभी बुराइयों को दूर करना है जिससे हम पुनः पराधीन न हों। पराधीनता का कारण अविद्याजनित मत-मतान्तर, सामाजिक भेदभाव वा जन्मना जातिवाद, मिथ्या परम्परायें एवं वेदाचरण के विपरीत आचरण करना था। शोक है कि यह सब कारण आज भी हिन्दू व आर्यों में विद्यमान हैं। ऋषि दयानन्द ने ही देश की आजादी का मार्ग सत्यार्थप्रकाश व आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में सुझाया था। आजादी प्राप्त होने में ऋषि दयानन्द के अनुयायियों का सबसे अधिक योगदान है। यदि ऋषि दयानन्द ने आजादी की प्रेरणा न की होती और आर्यसमाज व उसके अनुयायियों ने कर्तव्य भावना से आजादी में सक्रिय भाग न लिया होता, तो हमारा अनुमान है कि शायद हम आजाद न हुए होते। इस अवसर पर हमें पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, शहीद भगत सिंह के देश को आजाद कराने के लिए किए गए कार्यों व बलिदानों को भी स्मरण करना चाहिये। हमें स्मरण है कि जब शहीद भगत सिंह लाहौर से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला लेकर कलकत्ता पहुँचे थे तो वहाँ उन्हें आर्यसमाज मन्दिर में आश्रय मिला था। देश को आजादी की प्रेरणा कर आजादी

दिलाने वाले महर्षि दयानन्द एवं आर्यसमाज के योगदान को भी हमें स्मरण करना चाहिये।

सारा संसार ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदत्त सत्य ज्ञान के लिये उनका ऋणी है। देश चाहे भी तो उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। उनके बताये मार्ग का अनुकरण व अनुसरण कल्याण का मार्ग है और मत-मतान्तरों की शिक्षाओं में निमग्न रहना मनुष्य को ईश्वर को प्राप्त न कराकर प्रवृत्ति व लोभ के मार्ग पर ले जाता है जहां कर्म पफल भोग सुख-दुःखादि के अतिरिक्त कुछ नहीं है। पुनर्जन्म भी इससे सुधरता नहीं अपितु हमारी दृष्टि में बिगड़ता ही है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है उसे मांसाहार, मदिरापान, नशा, धूम्रपान, अधिक भोजन तथा धन सम्पत्ति का संग्रह वा परिग्रह छोड़कर अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में ही यथोचित पुरुषार्थ करना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने वेद व वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया। वेद व वैदिक धर्म सर्वांगीण धर्म एवं आचार शास्त्र है। इसकी शरण में जाने व वेदों को अपनाने से ही मनुष्य जीवन का कल्याण होता है तथा मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का अधिकारी बनता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों के सत्यस्वरूप का प्रकाश किया और वेदज्ञानयुक्त सत्यार्थप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थ लिख कर वैदिक धर्म का पालन करने में लोगों का का मार्गदर्शन किया। वैदिक धर्म को अपनाकर ही मनुष्य के जीवन की सर्वांगीण उन्नति होती है। ईश्वर व सृष्टि विषयक सभी रहस्यों का सत्य व यथार्थ ज्ञान होता है। हमें जीवन को वैदिक धर्म के अनुसार व्यतीत करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त होकर उसे सफल करना चाहिये। ओ३म् शम् । ❑❑

'दयानन्द सन्देश' के स्वामित्व आदि का विवरण

1. प्रकाशन स्थान	:–	427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006
2. प्रकाशन अवधि	:–	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:–	तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046 सीताराम बाजार, दिल्ली-110006
4. प्रकाशक	:–	धर्मपाल आर्य
क्या भरतीय हैं ?	:–	हां
पता	:–	12/61, पश्चिमी पंजाबी बाग, दिल्ली-110026
5. सम्पादक	:–	धर्मपाल आर्य
क्या भरतीय हैं ?	:–	हां
पता	:–	12/61, पश्चिमी पंजाबी बाग, दिल्ली-110026
6. स्वामित्व	:–	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट 427, नया बांस, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखित समस्त विवरण सत्य है ।

अप्रैल, 20201

धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक/सम्पादक)

कहाँ से कहाँ पहुँची राम-गंगा !

—राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९११२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कर रामभक्त श्री रामानन्द सागर जी ने रामायण को विश्वव्यापी बना दिया। उन्होंने यह बहुत ही महनीय व सराहनीय कार्य किया है । ऐसा करके वे वाल्मीकि रामायण को जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए जन-भाषा में 'रामचरित मानस' लिखने वाले महाकवि तुलसीदास जी की पंक्ति में जाकर खड़े हो गये हैं । 'वाल्मीकि-रामायण' भारत के प्राचीन आर्यों का गौरवशाली इतिहास है । समय के लम्बे अन्तराल के कारण व वैदिक धर्म के ह्रास के कारण उत्पन्न हुए बौद्ध, जैन व पौराणिक सम्प्रदायों के परस्पर संघर्ष से यह इतिहास ग्रन्थ धर्मग्रन्थ बन गया । सभी सम्प्रदायों ने राम के जीवन को अपने समय व मान्यता अनुसार ढालने का प्रयत्न किया, जिससे वाल्मीकि-रामायण में बहुत कुछ हटावट व मिलावट हो गई । विभिन्न देशों व विभिन्न भाषाओं में मिलने वाले रामायण के संस्करणों में क्षेत्रीय प्रभाव के कारण भी कुछ-कुछ अन्तर आता गया । हिन्दी (भक्ति काल) के महाकवि तुलसीदास जी ने मुगलों के आतंक से भयभीत हिन्दुओं को 'रामचरित मानस' का रसायन देकर उस समय के लिए बहुत महान् कार्य किया । उसी के कारण महर्षि वाल्मीकि की 'रामायण' संस्कृत के पण्डितों के एकधिकार से निकलकर सामान्य जन तक पहुँची । सामान्य व्यक्ति के लिए तो 'रामचरित मानस' ही वेद, उपनिषद व दर्शन शास्त्र बन गई। इससे राम की पूजा भक्ति का तो प्रचार हो गया, पर राम के इतिहास के साथ-साथ वैदिक सिद्धान्तों की भी बहुत हानि हुई ।

महाकवि तुलसीदास जी से पूर्व रामायण के नाम पर ऐसा बहुत कुछ लिखा जा चुका था, जो महामानव राम के समकालीन इतिहास के विपरीत था । पर तुलसीदास जी ने उनसे भी अतिरिक्त बहुत सी पुराणों की कहानियाँ व मान्यताएं जोड़ दीं । महापुरुष राम के इतिहास पर विष्णु अवतार राम की भक्ति भारी पड़ गई । अब 'रामायण सीरियल' में श्री रामानन्द सागर ने तुलसी-रामायण को मुख्य आधार बनाने के साथ-साथ यह भी ध्यान रखा है कि सभी क्षेत्रों में प्रचलित घटनाओं का इसमें समावेश किया जाए ताकि सभी स्थानों के लोग इसमें अपनापन देख सकें । मेघनाथ की पत्नी सुलोचना का सती होना समाज में प्रचलित है, पर इसका वर्णन वाल्मीकि व तुलसी रामायण में नहीं है। वैसे भी यह कुप्रथा अब प्रतिबन्धित है । अत: सागर जी ने नहीं दिखाई । यूं तो तुलसीदास जी ने 'सीता परित्याग' का प्रसंग भी नहीं लिखा, पर सागर जी जनमानस के आगे झुक गये और 'वाल्मीकि रामायण में लिखा हुआ है' यह कहकर दिखा दिया । जबकि आर्यसमाज के अतिरिक्त दूसरे भी निष्पक्ष विद्वान् इस घटना वाले उत्तरकाण्ड को महर्षि वाल्मीकि की रचना नहीं मानते । किसी ग्रन्थ में लिखा होने से ही कोई घटना या मान्यता सत्य नहीं मानी जानी चाहिए । इसके लिए उचित-अनुचित, सम्भव असम्भव की कसौटी होनी चाहिए । यदि सागर जी ने उसे अपनाया होता, तो राम को काल्पनिक व रामायण को उपन्यास कहने वाले लोग कुछ तो सत्य के समीप आते । पर रामायण सीरियल से राम के प्रति परमात्मा वाली भक्ति भावना रखने

वालों में अन्धविश्वास बढ़ा; राम को स्त्री व शूद्र विरोधी मानने वालों में राम के प्रति घृणा बढ़ी व राम को काल्पनिक मानने वालों की धारणा और भी दृढ़ हो गई ।

रामायण सीरियल देखने के बाद भी रामभक्तों ने पीरों-मजारों को पूजना नहीं छोड़ा, अपितु राम के मन्दिरों में साईं मियां और बैठा दिया । साईं के लिए विशेष मन्दिर बना दिये । राम की मूर्ति को जूते मारने और जलाने वाले पेरियार-पन्थियों ने डॉ० अम्बेडकर के अनुयायियों को भी संक्रमित कर दिया। वर्षों तक सरकार में रहने वाले व उनकी छत्रछाया में पालने वाले तथाकथित सेक्युलर लोगों ने तो 'राम काल्पनिक है' यह शपथ पत्र (हल्फनामा) थी । न्यायालय में दे दिया । यदि तुलसीदास जी ने अपने समय की आवश्यकता (हिन्दुओं को राम का सम्बल मिलेगा) अनुसार लिखा, तो श्री सागर जी को भी अपने समय की आवश्यकता (राम के सच्चे व ऐतिहासिक स्वरूप को दर्शाना) के अनुसार सीरियल बनाना चाहिए था, न कि अपनी व साधारण लोगों की पसन्द के आधार पर । यद्यपि वर्तमान वाल्मीकि रामायण भी पूर्णत: निर्दोष (शुद्ध) नहीं है (गीता प्रेस संस्करण के सम्पादक ने भी कई जगह न चाहते हुए भी मिलावट स्वीकार की है) तथापि सागर जी स्वविवेक का प्रयोग करके उसके आधार पर केवल सत्य इतिहास दिखा देते, तो सम्भवत: भारतीय छात्रों को पाठ्यक्रम (इतिहास) में रामायण काव्य का 'लेखन काल' की जगह बाबर के आक्रमण की तरह 'घटना काल' लिखा जाता।

केवल मनोकामना पूर्ति की इच्छा से रामायण ग्रन्थ की पूजा-पाठ करने वाले लोग इतिहास का महत्त्व नहीं जानते । जो जानते हैं, उनमें से भी बहुत से राम की अलौकिकता (परमात्मा का अवतार) का मोह नहीं छोड़ पा रहे हैं । पर राम भक्तों का यह नहीं भूलना चाहिए कि आज कम्प्यूटर व इन्टरनेट के साये में जीने वाला मस्तिष्क यदि किसी घटना या सिद्धान्त को विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं पाएगा, तो वह उसे आउट ऑफ डेट कहकर फेंक देगा । फिर वह कथन चाहे किसी बड़े ऋषि का हो या किसी महाकवि का । वैदिक विद्वान् (समृति शेष) पण्डित कमलेश कुमार अग्निहोत्री जी ने, 'रमचरित मानस' का अनेक वार गहन अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष निकाला --"वाल्मीकि रामयाण के ऐतिहासिक श्रीराम को ईश्वर का अवतार बताकर तुलसीदास जी ने इतिहास एवं अध्यात्म-प्रेमियों का हित नहीं किया ।"

इस कथन के समर्थन में 'मानस' के कुछ विचारणीय बिन्दु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं--वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड प्रथम सर्ग में नारद जी द्वारा महर्षि वाल्मीकि को संक्षिप्त रामचरित (जन्म से राज्याभिषेक तक) सुनाया गया, जिसमें उत्तरकाण्ड की कोई घटना नहीं है। दूसरे सर्ग में महर्षि के शोक से श्लोक **'मा निषाद...'** बनने का वर्णन है । तीसरे सर्ग में महर्षि ने रामायण में लिखी रामकथा का संक्षेप में परिचय दिया है । चौथे सर्ग में लव-कुश उसे राम-दरबार में सुनाने आते हैं । पांचवें से ३१ वें सर्ग तक मुख्यत: राम कथा ही चलती है ।

जबकि रामचरितमानस में बालकाण्ड के आधे से अधिक भाग तक जाने पर भी रामकथा की कहीं कोई चर्चा नहीं है । विशेष बात यह भी है कि तुलसीदास जी ने रामायण का रचियता महर्षि वाल्मीकि जी को नहीं माना । उनके अनुसार शिवजी ने श्रीराम सम्बन्धी चरित्र रचकर पार्वती को सुनाया और फिर काकभुशुण्डि को दिया । उनसे याज्ञवलक्य ने प्राप्त कर भरद्वाज को सुनाया । वही चरित्र गोस्वामी तुलसीदास ने अपने गुरु से सुना और वर्णन किया । देखिये, तुलसीदास

जी ने तो इतिहास की जड़ पर ही कुल्हाड़ा चला दिया । भरद्वाज जी ने मुनि याज्ञवलक्य से पूछा कि राम कौन हैं ? उत्तर में याज्ञवलक्य जी ने शिवपुराण पर आधारित शिव-सती (पार्वती) के जन्म-जन्मान्तर की कहानी सुना दी–सती का भस्म होना, पार्वती बनना, शिव से विवाह कार्तिकेय का जन्म आदि । बताइये इनका राम कथा से क्या समबन्ध है ।

राम जन्म (अवतार) के कारण बताते हुए तुलसीदास जी ने लिखा है–विष्णु ने जलन्धर दैत्य का रूप बनाकर उसकी पतिव्रता स्त्री का शील भंग किया तो सत्य जानकर उस स्त्री ने विष्णु को शाप दिया । दूसरे, नारद के शाप के कारण विष्णु को राम बनना पड़ा । तीसरे, राजा मनु की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने वरदान दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊंगा । अर्थात् जन्म का आधार कर्म-फल व्यवस्था न होकर वरदान या शाप है । दूसरे, अवतारवादी लोग जो कारण (धर्म का उद्धार, पापियों का नाश) अवतार के बताते हैं, उनमें से एक भी तुलसीदास जी ने नहीं लिखा।

तुलसीदास जी ने लिखा है कि जिस दिन श्रीराम जी का जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ चले आते हैं । सोचिये, वेद तो राम से पूर्व थे, फिर यह किस मंत्र में लिखा है? तुलसीदास जी ने ऐसे ही वेद का नाम लेकर झूठ चलाई है । भक्ति भावना में कवि ऐसे बहे कि सृष्टि के नियम ही उलट दिये । लिखा है कि जब राम आदि चारों भाइयों का जन्म हुआ, तो वह कौतुक देखकर सूर्य एक महीने तक अयोध्या में ही रहा । सोचिये, जब सूर्य अस्त ही नहीं हुआ तो तुलसीदास जी को महीना बीतने का ज्ञान कैसे हुआ ?

यद्यपि वाल्मीकि रामायण में भी राम आदि चारों भाइयों को विष्णु रूप लिखा है, जो इतिहास की दृष्टि से प्रक्षिप्त लगता है क्योंकि महर्षि वाल्मीकि को आचरणीय गुणों से युक्त महामानव का चरित लिखना था, परमात्मा का नहीं । पर तुलसीदास जी ने तो उत्पन्न होते ही राम से माता कौशल्या को शस्त्रधारी चतुर्भुज (विष्णु) रूप ही दिखवा दिया । अन्यत्र भी माता को राम के चमत्कार दिखवाए हैं । अवतारवादी मान्यता के लोग इतिहास को महत्त्व नहीं देते । वे तो रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों को संकट मोचन के लिए पूजते व सुनते हैं । इसीलिए गीता प्रेस संस्करण 'वाल्मीकि रामायण' में श्री जानकी नाथ शर्मा ने प्राक्कथन (नम्र निवेदन) में लिखा है कि बंगला मराठी संस्करणों के साथ ही आर्य समाज की व्याख्याओं की यहाँ कोई बात नहीं छेड़नी है । इसीलिए पूजा पद्धति के साथ रामायण का माहात्म्य (स्कन्दपुराण पांच अध्याय) भी बालकाण्ड से पूर्व लिखा है ।

वा० रा० के ४८ वें सर्ग में लिखा है कि ऋषि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या को शाप दिया था कि तू यहाँ कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राख में पड़ी रहेगी । और ४९वें सर्ग में लिखा है कि उस आश्रम में पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता से अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया ।

जबकि तुलसीदास जी ने लिखा है कि गौतम मुनि की स्त्री अहल्या शापवश पत्थर की देह धारण किये थी और राम के चरणों का स्पर्श पाते ही वह अपने रूप में आ गई देखिये, यह तो बिल्कुल उलटा कर दिया । राम ने अहल्या के पैर छूए थे न कि उसे पैर से छुआ ।

तुलसीदास जी ने लिखा है कि जनकपुरी में पहुँचने के अगले दिन राम-लक्ष्मण बाग में फूल लेने गये, तो सीता भी सखियों के साथ वहाँ गई हुई थी । दोनों ने परस्पर देखा । सीता ने अपना मनोरथ (राम को पति के रूप में पाना) पूरा करने के लिए मन्दिर में पार्वती की पूजा की । पर

आश्चर्य की बात तो यह हुई कि पार्वती की मूर्ति बोली–हे सीता, हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मन:कामना पूरी होगी । सोचिये, मुस्लिम आक्रमणकारियों ने देश में हजारों मूर्तियाँ तोड़ीं, तब तो कोई मूर्ति नहीं बोली; किसी ने अपना शस्त्र नहीं चलाया । इतना सब होने पर भी तुलसीदास जी के भक्त आज भी उसी चमत्कार की बाट जोह रहे हैं । अपने आप भी घड़ लेते हैं । तभी तो तुलसीदास जी के पास आकर राम-लक्ष्मण से तिलक लगवा दिया । सोचिये, तुलसीदास जी के समय तक मुस्लिम आक्रान्ता बाबर अयोध्या का राम मन्दिर तोड़ चुका था । यदि राम तब आये थे, तो मन्दिर को पुन: खड़ा कर कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाया ?

वा०रा० के अनुसार जब राम-लक्ष्मण ने राजा जनक की यज्ञशाला में रखे धनुष को देखने की इच्छा व्यक्त की और शिवधनुष तोड़ा तो वहाँ के राजाओं की भीड़ नहीं थी। अर्थात् वे असफल होकर पहले जा चुके थे । जबकि तुलसीदास जी ने राम लक्ष्मण को उसी स्वयंवर सभा में पहुँचाया। जब उन राजाओं में से कोई भी धनुष नहीं उठा सका तो एक ही बार दस हजार राजा उठाने लगे, पर वह फिर भी नहीं उठा । राजा जनक क्षत्रियों को धिक्कारने लगे । इस पर लक्ष्मण क्रोधित हो गये और धनुष उठाने की राम से आज्ञा माँगने लगे। ऋषि विश्वामित्र की आज्ञा से राम ने धनुष तोड़ा। सीता ने जयमाला डाली। तभी परशुराम क्रोधित होकर आये । लक्ष्मण के साथ उनका उद्दण्डता-पूर्वक अशिष्ट भाषा में संवाद हुआ ।

सोचिये राजा जनक की शर्त धनुष अकेले उठाने की थी, मिलकर नहीं । और उस धनुष पर बीस हजार हाथ कहाँ लगे होंगे । मान लो यदि वे उठा देते तो सीता का विवाह किससे होता ? तुलसीदास जी ने अपने आराध्य राम को अतुल बलशाली दिखाने के चक्कर में उचित अनुचित, सम्भव-असम्भव का कुछ भी विचार नहीं किया।

राजाओं की सभा में राजा जनक के प्रति व परशुराम के प्रति यतिवर लक्ष्मण से उद्दण्डता-पूर्वक असभ्य संवाद करवाकर तुलसीदास जी ने किस आदर्श की स्थापना की है ? जबकि रामायण के अनुसार तो परशुराम जी बाद में वन में तब मिले थे, जब राम की बारात अयोध्या वापिस आ रही थी । कवि को कल्पना करने का अधिकार है, यदि उससे कोई आदर्श (प्रेरक प्रसंग) स्थापित होता हो । केवल मनोरंजन के लए इतिहास नहीं बिगाड़ना चाहिए ।

सामान्यत: मनुष्य के मन में जो होता है, बाहर भी उसे वही दिखता है । तुलसीदास जी का मन राम-भक्ति में रमा हुआ था, तो राम नाम के आगे उन्हें वेद-शास्त्र आदि के उपदेश, व सिद्धान्त आदि सब व्यर्थ लगे । बालकाण्ड के आरम्भ में अच्छे-बुरे सब प्रकार के देवता राक्षस, ऋषि आदि की वन्दना कर राम नाम की महिमा का गान करते हुए उन्होंने लिखा है–"कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है; राम नाम ही एक आधार है । कपट की खान कलियुग रूपी कालनेमि के मारने के लिए रामनाम ही बुद्धिमान् और समर्थ श्री हनुमान जी हैं ।"

जहाँ योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलि केवल प्रणव (ओंकार) नाम को ही अर्थ की भावना के साथ जपने और आचरण सुधारने पर ही जप का लाभ होना बताते हैं, वहीं तुलसीदास जी राम-नाम को उल्टा जपने पर भी उतना ही लाभ होना मानते हैं । फिर तो आहार, आचार, विचार, व्यवहार आदि कुछ भी सुधारने की आवश्यकता नहीं है। अयोध्याकाण्ड में लिखा है–'उल्टा नाम जपे जग जाना, वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना ।' अर्थात् उल्टा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के समान हो गये । फिर सीधा नाम (राम) जपने का परिश्रम कोई क्यों करेगा ? ब्रह्म के समान

बनाकर भी तुलसीदास जी ने उनकी बात (रामायण) न मान कर अपनी कल्पनाएं क्यों कीं? उन्हें रामायण का रचयिता की भावना से प्रणाम करके भी एक तरफ बैठा दिया। सोचिये, उल्टा नाम जप कर भी सीधा फल (मुक्ति) पाने की बात कहने वाले व्यक्ति से यह आशा कैसे लगाई जा सकती है कि वह इतिहास को सीधा रहने देगा?

वा० रामायण का यह अच्छा प्रसंग है कि जब व्यक्ति छोटी बुद्धि (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अज्ञान द्वेष आदि से आच्छादित) के लोगों की सलाह पर चलकर अपेन विवेक से काम नहीं लेता, तो उसे मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। पर तुलसीदास जी ने लिख दिया कि देवताओं की प्रार्थना पर सरस्वती ने मंथरा की बुद्धि बिगाड़ दी, इसमें मंथरा या कैकेयी का कोई दोष नहीं। बताइये, अब इसमें क्या प्रेरक तत्त्व रह गया ? यदि मनुष्य के हर कार्य को देवता बाधित व सिद्ध करते हैं, तो चोर व हत्यारे को जेल व फांसी क्यों दी जाती है ?

सोचिये, दूसरों को वरदान देने वाले पौराणिक देवता क्या इतने लाचार थे कि वे स्वयं सीधे ही राक्षसों को न मार सके। जिन्हें सृष्टि का कर्त्ता (ब्रह्मा) धर्त्ता (विष्णु) और संहरता (शिव) माना जाता है, वे सभी देवताओं के साथ मिलकर भी यह नहीं कर सके, जो उन्हें शरीर (मानव, भालू-बन्दर) बदलने पड़े। राक्षसों को वरदान देने वाले भी ये ही थे, फिर वरदान देने से पहले इन अन्तर्यामियों को भविष्य नजर क्यों नहीं आया ? और बार-बार ये अपनी उन्हीं गलतियों को क्यों दोहराते रहे ? इतनी समझ तो सामान्य मनुष्य भी रखता है।

वा०रा० के अनुसार निषादराज गुह के आदेश से उनके भाई-बन्धुओं ने राम लक्ष्मण व सीता को नाव में बैठाकर स्वयं गंगा पार करवाई थी। जबकि तुलसीदास जी लिखते हैं कि राम ने जब केवट से नाव माँगी तो वह मना कर गया और उसका कारण बताते हुए उसने कहा हे राम ! आपके चरणों में लगी धूल ने पत्थर को मुनि की पत्नी (अहल्या) बना दिया था। कहीं मेरी नाव नारी न बन जाए। इसलिए नाव पर चढ़ने से पहले मैं आपके चरण धोऊंगा। यहाँ कवि ने अपनी पूर्व कल्पना को तो पुष्ट कर लिया, पर इतिहास चमत्कारों से ढक गया। यदि राम का पैर लगने से पत्थर नारी बना था, तो क्या केवट की नाव पत्थर थी, जो उसके नारी बनने का डर लगा।

यद्यपि वा०रा० में भी बहुत मिलावट हुई है तथापि कुछ स्थलों को छोड़कर मानवों का वह गौरवशाली इतिहास धरती पर घटित होता हुआ दिखता है, पर 'रामचरितमानस' में वर्णित जादूगरी को देखकर अन्धविश्वासी भक्तों को छोड़कर कोई भी विवेकशील व्यक्ति इसे कालपनिक ही कहेगा। वा०रा० के अक्षर-अक्षर को महर्षि वाल्मीकि की रचना मानने वाले पौराणिक विद्वानों को इस बात का उत्तर देना होगा कि महाभारत के लगभग २००० साल बाद पैदा होने वाले तथागत बुद्ध व उनके शिष्यों की चर्चा महाभारत से भी हजारों वर्ष पूर्व लिखी गई रामायण में कैसे हुई ? अयोध्या काण्ड, सर्ग १०९, श्लोक ३४ देखिये-

यथा हि चौरः स तथा हि बुद्ध-
स्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां
स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्॥

अर्थात् जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार (वेद विरोधी) बुद्ध (बौद्ध मतावलम्बी) भी दण्डनीय है। तथागत (नास्तिक विशेष) और नास्तिक (चार्वाक) को भी यह इसी कोटि में समझना चाहिए। (गीता प्रेस)

❑❑

काल सर्प योग एवं मङ्गली दोष

–आचार्य दार्शनेय लोकेश (दूर० : 0120-4271410)

शास्त्रों ने जो भी नीति नियामक हमारे सामने रखे हैं उनमें से एक है **'देयं परं किं ह्यभयं जनस्य....'** जिस पर हमारे ज्योतिषियों ने साफ अनदेखी कर रखी है । उल्टे भय विस्तारण के अनेकानेक करतब ढूंढे जाते हैं । मङ्गली दोष, काल सर्प दोष, राहु काल इत्यादि जैसे कई नुस्खे हैं जिनका भय विस्तारण के माध्यम से अपनी पण्डिताई को प्रतिष्ठापित करने के सिवाय और कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है ।

आज इस ज्योतिष ज्ञान सन्दर्भित आलेख के माध्यम से हम कालसर्प दोष और मङ्गली दोष के बारे में जानने समझने का प्रयास करेंगे ।

कालसर्प दोष–

सर्वप्रथम मैं आपको डॉक्टर बी.वी. रमन जो फलित ज्योतिष के जगत् में विशेष स्थान रखते थे, का स्वयं का कथन स्पष्ट कर दूँ ।

उनका यह कथन 'थ्री हण्ड्रेड इम्पोर्टेण्ट काम्बिनेशंस' नामक पुस्तक के पृष्ठ ३२६ पर प्रकाशित है। लिखते हैं, "Strictly speaking KSY (Kaal Sarp Yoga) does not find the place in the classical astrological literature. How this yoga gained currency and gathered a sinister meaning is not clear."

मैंने स्वयं ने भी ज्योतिष के आधार ग्रन्थों में इस योग के बारे में कुछ नहीं पढ़ा है । अस्तु यह लेख पूरी तौर पर फलित शास्त्र के आधुनिक ब्रह्म ज्ञानियों का कर्तव्य है । जो है और जैसा है, उसको जान लेना आप सब के लिए बहुत जरूरी है ताकि आप स्वयं गुमराह न हों और आप के होते हुए, आपका निकटवर्ती समाज भी गुमराह न हो ।

कहा गया है कि यदि कुण्डली (ग्रह चक्र) में सूर्य से शनि तक के सभी ग्रह राहु और केतु के मध्य में हों और कोई भी घर खाली न हों तो (उस काल को जिस काल में ऐसी ग्रह स्थिति बन रही है) कालसर्प नाम का दोष होता है । यदि उस समय में किसी व्यक्ति का जन्म होता है तो यह दोष उस समय में जन्मे हुये अर्थात् 'जातक' को मिलता है । मूल रूप से काल सर्प दोष की यही परिभाषा है । अब क्योंकि दोष बहुत कम बनता है तो भयदोहन के लिए और इसकी उपयोगिता का क्षेत्रफल बढ़ाने के निमित्त इसकी परिभाषा में से "कोई भी घर खाली न हो" वाली शर्त हटा दी गयी और 'सभी ग्रह राहु और केतु और राहु के मध्य स्थित हों' ऐसा भी जोड़ दिया गया ।

पुनः कालान्तर में कालसर्प दोष के कई प्रकार भी बना दिये गए जो कि इस बात पर निर्भर करते हैं कि ग्रहों का क्रम क्या है, कौन-कौन से ग्रह किस-किस राशि में हैं । १२ प्रकार तो राहु की राशि के आधार पर ही बना दिये गए । भिन्न-भिन्न प्रकार के सर्प दोषों के भिन्न-भिन्न फलितार्थ बना लिए गए ।

वस्तुतः प्रत्येक वर्ष औसतन ५० दिन ऐसा योग बन सकता है । इस प्रकार प्रत्येक वर्ष लगभग १४% व्यक्तियों की कुण्डली में किसी न किसी प्रकार का कालसर्प दोष मिलेगा ।

आप सब राहु व केतु के विषय में इतना तो जानते ही होंगे कि राहु व केतु कोई पिण्ड नहीं हैं अपितु ज्यामितीय बिन्दु मात्र हैं । इनका कोई पञ्च भौतिकीय अस्तित्व नहीं है । इसीलिए इनमें रंग इत्यादि की लक्षणा या गुणधर्मिता होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

ज्योतिषीय भाषा में कहें तो ये विमण्डल (चन्द्रमा का परिक्रमा पथ) और क्रान्तिवृत (सूर्य का परिक्रमा पथ) के कटान बिन्दु मात्र हैं । इसीलिए ये सदैव एक दूसरे से १८०° की दूरी पर

होते हैं । इसी से कुण्डली में इन्हें एक-दूसरे से सातवें घर में ही दिखाया जाता है । ये ग्रहण गणना के गणितीय बिन्दु होने से अशुभ यानि फलित की भाषा में कहें तो अकारक माने गये हैं । राहु और केतु को इसीलिए अशुभ की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि सूर्य या चन्द्रमा के राहु या केतु बिन्दु की निर्धारित निकटता पर होने से ही सूर्य या चन्द्र ग्रहण होता है । इसमें चन्द्र और सूर्य ग्रहण को एक अशुभत्व के रूप में राहु और केतु के परिणामों से जोड़कर देखा गया है ।

इस प्रकार से कालसर्प दोष केवल और केवल फलित ज्योतिष का 'भय विस्तारण से धन कमाओ' का हेतु मात्र है । फरवरी १९८० की एस्ट्रोलॉजिकल मैगजीन के पृष्ठ १८४ पर कालसर्प योग का विस्तृत विवेचन और विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए यह निष्कर्ष लिया गया था कि (इस फलित शास्त्रीय) काल-सर्प योग के विचार में निम्नलिखित बातों पर ध्यान जाना आवश्यक है–

१. राहु और केतु के साथ कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिए ।

२. राहु या केतु लग्न में नहीं होना चाहिए।

३. ग्रह शृंखला की गिनती लग्न से सीधे राशि चक्र के क्रम में होनी चाहिए । केतु किन्तु हमेशा अन्त में होना चाहिए ।

४. कोई भी शुभ ग्रह या अशुभ भाव का अधिपति राहु या केतु को देख रहा हो तो कालसर्प योग प्रभावी नहीं होता ।

५. राहु पर शनि की दृष्टि काल सर्प योग को निरस्त करती है ।

बृहत संहिता के राहुचार के अध्याय में लिखा है–

अथ तु भुजगेन्द्र रूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णति ।

मुख पुच्छान्तर सन्स्थम स्थगयति कस्मान्न भगणार्ध ॥

अर्थात् यदि राहु सर्पाकार होता तो अपने मुख या पुच्छ से छः राशियों के अन्तर पर स्थित सूर्य या चन्द्रमा को अपने मुख या पुच्छ में लेते समय बीच की सभी छः राशियों और इनमें स्थित सभी ग्रहों को भी अन्धेरे से ढक लेता । अर्थात् राहु न तो सर्पाकार है और न ही छाया ग्रह । आशय यह है कि यदि राहु सर्पाकार होता या छाया ग्रह होता तो ग्रहण (चन्द्र ग्रहण) के समय जब सूर्य व चन्द्रमा १८०° की दूरी पर होते हैं और चन्द्रमा छाया से ग्रस्त होता है तो उसी समय राहु के बीच की सभी राशियों और उनमें स्थित ग्रहों को भी अन्धेरे से ढक देना चाहिए था । किन्तु ऐसा नहीं होता है । इसीलिए स्पष्ट है कि राहु न तो सर्पाकार है और न ही छाया ग्रह है । इस प्रकार देखा जाए तो कालसर्प दोष का फलित ज्योतिष के ही प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है । बल्कि राहु/केतु के सर्पाकार होने या छायाग्रह होने का निराकरण ही है । खगोल विज्ञान से भी कालसर्प दोष का कोई आधार सिद्ध नहीं होता ।

मङ्गली दोष–

उपरोक्त, स्वर्गीय डॉ० बी.वी. रमन की ही पुस्तक मुहूर्त और इलेक्शन एस्ट्रोलॉजी पृष्ठ १०५ में भी मङ्गली योग का उल्लेख "The so-called kuja dosha" कहते हुए किया है ।

धने व्यये च पाताले जामित्रे चासष्टमे कुजा;
स्त्रीणां भर्तुविनाशंच भर्तुणां स्त्री विनाशनम् ।

उत्तर भारतीय शास्त्रियों के द्वारा 'धने' (लग्न से दूसरा स्थान) के स्थान पर 'लग्ने' (कुण्डली का पहला स्थान) पढ़ा जाता है । उक्त में कहा गया है कि यदि मङ्गल ग्रह धन (द्वितीय/उ.भा. -लग्न याने प्रथम), चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश भाव में हो तो मङ्गली दोष होता है । अर्थात् मङ्गल की उपरोक्त में से कोई स्थिति यदि कन्या की कुण्डली में हो तो वह 'पति के लिए' और यदि लड़के की कुण्डली में ऐसी स्थिति हो तो वह स्थिति 'पत्नी के लिए' अशुभ या अकारक होती है । कुल मिला कर इसे दाम्पत्य जीवन के लिए अशुभ माना गया है ।

मङ्गली दोष में भी भयदोहन को बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ परिवर्तन किया गया है । अब यह जोड़ दिया गया है कि मङ्गल को लग्न कुण्डली के साथ-साथ चन्द्र कुण्डली से भी देखा जाना चाहिए । अर्थात् यदि मङ्गल चन्द्रमा से १/२, ४, ७, ८ व १२वें घर में हो तो भी मङ्गली दोष होगा । पुनः मङ्गली दोष के समय से जिस राशि में मङ्गल है उसके अनुसार भी फल भिन्न-भिन्न होता है । मङ्गली दोष के प्रतिकार के लिए भी कई दोषभंग योग बनाये गए हैं । क्योंकि हर वो व्यक्ति जिसकी कुण्डली में मङ्गली दोष हो, दाम्पत्य जीवन से दुःखी ही हो, ऐसा भी नहीं है। जो भी कुछ प्रत्यक्ष हो उसके लिए कोई न कोई कारण निरूपित किया जा सके उद्देश्य ऐसी व्यवस्था को बनाए रखना है ।

अगर आप इस दोष की परिभाषा को जरा ध्यान से देखेंगे तो पाएंगे कि कुण्डली के कुल १२ घरों में से ५ में यदि मङ्गल हो तो यह दोष हो जाता है । इस प्रकार लगभग ४२% व्यक्तियों की कुण्डली में यह दोष उपलब्ध होगा । अब यदि चन्द्र कुण्डली से भी देखा जाना है तो निश्चित ही प्रभावित व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाएगी । दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच व्यवहार सभी लोगों के लिए बदलता रहता है । कभी अच्छा तो कभी थोड़ा मन मुटाव होता है। इस सब के कारण मङ्गली दोष का दोहन अधिक किया जा सकता है और इसीलिए मङ्गली दोष को इतना अधिक उपलब्ध बनाया गया है ।

फलित शास्त्रियों ने मङ्गली दोष के लिए भी कुछ निवारक तथ्य स्पष्ट किए हैं किन्तु आम जनता के संज्ञान में फलित पण्डित इन तथ्यों को जन संज्ञान में बिल्कुल भी नहीं आने देते । जैसे–

१. दूसरे घर में मङ्गल मिथुन या कन्या राशि में हो,
२. १२वें घर का मङ्गल वृषभ या तुला राशि का हो,
३. चौथे घर का मङ्गल मेष या वृश्चिक राशि का हो, सातवें घर का मङ्गल कर्क या मकर राशि का हो,
४. आठवें घर का मङ्गल धनु या मीन राशि का हो और
५. यही नहीं किसी भी स्थान पर यदि मङ्गल सिंह या कुम्भ राशि में हो तो मङ्गली दोष नहीं होता है ।

वस्तुतः मङ्गल हमारे जीवन को इस प्रकार से प्रभावित कर ही नहीं सकता । मङ्गल के फलित शास्त्रीय प्रभाव खगोल विज्ञान से भी अप्रमाणित हैं ।

फलित शास्त्र के सम्बन्ध में अन्य भी कई योग आदि प्रचलन में हैं । उन पर भी हमारा यही कहना है । फलित ज्योतिष (शास्त्र) के ग्रन्थ बृहज्जातक में लिखा है–

"पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयाः कृताः।
चतुर्थ भवने सूर्यात् ज्ञसितौ भवमः कथम् ॥"

अर्थात् वराहमिहिर स्वयं कह रहे हैं कि पूर्व शास्त्रों के अनुसार मैंने वज्रादि योग लिख तो दिए हैं पर वे असम्भव हैं क्योंकि सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र भला कैसे जा सकते हैं ।

फलित ज्योतिष के योगों को फलित ज्योतिष के ही ग्रन्थों में असम्भव कह कर फलित ज्योतिष की सत्यता स्पष्ट कर दी गई है । नक्षत्र सूचियों (तथाकथित ज्योतिषियों) के द्वारा अपने मन्तव्य की सिद्धि के लिए इन्हें छुपाया गया है ।

स्पष्ट है कि फलित ज्योतिष के परचम निराधार है ।

अब रही बात फलित पण्डितों के द्वारा कालसर्प दोष या 'ऊटपटांग कृत्यों के द्वारा' मङ्गली दोष की शान्ति कर देने की बात तो हम इस विषय में अधिक न लिखते हुए शास्त्र वचन को उद्धृत कर देना मात्र पर्याप्त समझते हैं –

ना भुक्तं कर्म क्षीयते कल्प कोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभ्॥

❑❑

स्मृतिशेष आचार्य ज्ञानेश्वर जी आर्य का वक्तव्य

—महेन्द्र गांधी, गांधीनगर

भोजन खाने से भूख मिटती है, पानी पीने से प्यास बुझती है, पंखा या ए०सी० चलाने से गर्मी दूर होती है, ऊनी वस्त्र पहनने से ठण्ड दूर हो जाती है। खाना, पीना, सोना, चलना, घूमना, दौड़ना, कमाना, भोगना तथा दान, पुण्य, सेवा, परोपकार आदि इसलिए हम करते हैं कि इससे हम अनेक दु:खों से बचें और सुख की प्राप्ति हो। जीवमात्र की सहज चेष्टा यही होती है कि वह सारे दु:खों से दूर हो और सदा सुख अपने पास बना रहे।

बुद्धिमान मनुष्यों को अपने जीवन का लक्ष्य यही बनाना चाहिए कि वे ऐसे ही क्रिया-कलाप करें जिससे दु:ख बिल्कुल प्राप्त न हो और सुख लगातार मिलता रहे। इसके लिए प्रथम हमें कर्म की मीमांसा करनी होगी। कर्म क्या है? कर्म के परिणाम, फल और प्रभाव क्या हैं? शुभ-अशुभ कर्म क्या है? किस-किस स्तर पर कर्म होते हैं? सकाम-निष्काम कर्म क्या है? हम कैसे कर्म करें जिससे सुख की वृद्धि हो तथा नितांत दु:ख की निवृत्ति हो? कैसी भावना से हम शुद्ध कर्म करें, जिससे मोक्ष मिले? इस पर गम्भीरता से घंटे-दिन या मास नहीं, वर्षों तक चिंतन करना पड़ेगा, तब हमारी सच्चे सुख की और गति तीव्र बनेगी।

क्या ऐसा जीवन जिया जा सकता है, जिससे हम दिनभर दु:खरहित बने रहें और निरंतर शुद्ध सुख का भोग करते रहें? उत्तर है—"हां", ऐसा जीवन जिया जा सकता है। हमारे अनेक अगिनत ऋषि-मुनि-महात्मा-योगीजन ने ऐसा जीवन जीकर मृत्यु बन्धन से छूटकर मोक्ष रूपी अमृतफल को प्राप्त किया है। इसके लिए अति आवश्यक है कि हमारा जीवन ईश्वर आज्ञा के पूर्ण अनुकूल, शुद्ध, पवित्र और निष्काम हो। हमारी प्रत्येक इन्द्रिय पर, मन की प्रत्येक इन्द्रिय पर, मन की प्रत्येक वृत्ति पर हमारा शासन हो। हमारा विचार, संकल्प, उद्देश्य परिमार्जित, स्पष्ट, पवित्र तथा संयमित हो। हमारा भोजन सात्त्विक एवं संतुलित हो। हमारी वाणी संयमित मधुर, हितकारी और सार्थक हो। हमारी प्रत्येक चेष्टा भद्र तथा शालीन हो। हमारे प्रत्येक कार्य बुद्धि- पूर्वक तथा आयोजनबद्ध हो।

आज मनुष्य अति शिक्षित है, करोड़पति है, अनेक सुख सुविधाओं से युक्त है, अधिक धन-ऐश्वर्य तथा उत्तम पद-प्रतिष्ठा से शोभित है, फिर भी वह दु:खी है, पीड़ित है, क्लेशित है। कभी वह ऐसा कार्य कर बैठता है कि वह अपने आप पर भी आश्चर्य अनुभव करता है और अंत में महापश्चाताप करता है। अथवा तो वह आत्महत्या कर लेता है या तो किसी को मार डालता है। इसका कारण यही है कि वह जीवन जीने की यथार्थ शैली से बहुत दूर है, आध्यात्मिक ज्ञान (परा विद्या) का उसमें अभाव है। अध्यात्म विद्या की कमी होने से अच्छे सेवा-सत्संग-यज्ञ आदि परोपकार के कार्य करते हुए भी आज का मनुष्य दु:खी-पीड़ित और अतृप्त है। अत: अपना जीवन उसे बन्धयुक्त भाररूप प्रतीत होता है।

सांख्यकार के ऋषि डंके की चोट पर कह रहे हैं कि—

"कुत्रापि कोऽपि सुखी न"

अर्थात् संसार मे कोई भी, कहीं भी पूर्ण सुखी नहीं है। संसार में जन्म लेने वाला दु:ख से कभी बच नहीं सकता। जो यहाँ आया है, निश्चित रूप से जायेगा। ऋषि-'मुनि-योगी-विवेकीजन तीन प्रकार के दु:खों से बच नहीं सकते। आध्यात्मिक दु:ख खुद अपने कारण आते हैं, अत: अपने आप को जागरूकता पूर्वक अपनी इन्द्रियों पर संयम करके, अध्यात्म ज्ञान अनुसार जीवन यापन करे तो अधिकतम दु:खों से बच सकता है, परन्तु अन्यों से अर्थात् आधिभौतिक तथा आधिदैविक दु:खों से

बच नहीं सकता । दु:खों से नितांत पीछा छुड़ाना हो तो एक ही उपाय है–"आनेवाले जन्म को रोको"–अर्थात् ऐसे ही हम कर्म करें जिससे हमारा जन्म ही न हो । जन्म के बीज को ही जलाकर भस्म कर दो ।

अपवर्ग (मोक्ष) के उपाय बताते हुए न्यायदर्शनकार कहते हैं–

दु:खजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानामुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायादपवर्ग: ।

अर्थात् दु:ख तथा बन्धन का मूल कारण है मिथ्याज्ञान, उल्टा ज्ञान । मिथ्या ज्ञान होने से दोष-गलती होती है, दोष से शुभाशुभ प्रवृत्ति होती है । शुभाशुभ कर्म से जन्म होता है, और जन्म होने से दु:खों से बच नहीं सकते । सबका मूल अविद्या है, अज्ञान है, उलटी मान्यता है । वह अज्ञान दूर करो, सारी इमारत धराशायी हो जायेगी।

संसार में मोक्ष प्राप्त करने वाला ही वास्तव में कुशल है, स्वस्थ है । हम किसी से पूछते हैं कि "क्या आप कुशल हो, ठीक हो ?"

उत्तर मिलता है कि "हां जी, कुशल हैं, ठीक हैं" । जब गम्भीरता से मित्रभाव से दो-तीन बार वही प्रश्न पूछते हैं, तब मालूम पड़ता है कि सब ठीक है बतानेवाले वास्तव में बहुत दु:खी हैं । सब कुछ होते हुए भी वह पीड़ित हैं । ऊपर से तो "ठीक है" बोलना पड़ता है । जिसके मन- मस्तिष्क में भौतिकता है, संसार के विषय जिसको आकर्षित कर रहे हैं, उसे शांति कहाँ ? सुख कहाँ? जो मनुष्य अपनी मनमर्जी अनुसार -मनमाने ढंग से जीता है, वह कैसे सुखी होगा ? ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करने वाला कभी दु:खों से बच नहीं सकता । बिना मांगे दु:ख तो आ ही जाते हैं ।

हम किसी को "मोक्ष" के विषय में बताते हैं, उनका महत्त्व समझाते हैं, तो वह कहते हैं–

"आचार्य जी, सच कहें तो आप मोक्ष-मुक्ति की बात छोड़ो । खाना, पीना, घूमना, नाचना, कमाना, भोगना आदि जहाँ कुछ न हो, वहाँ जाकर हम क्या करेंगे? यह इन्द्रियां परमात्मा ने हमें क्यों दी हैं ? हम तो यहीं ठीक हैं। संसार है तो दु:ख आते-जाते रहते हैं। हम जो हैं, ठीक हैं। हमें अपनी तरह जीने दो ।"

जो व्यक्ति अति दु:खी है, पीड़ित है, बन्धन युक्त है, फिर भी वह अपने दु:ख को दु:ख न समझे । दु:खों से समझौते कर ले । उसे अब कौन बचाये ? यह महान अज्ञान है । जो व्यक्ति दु:खों को अपना साथी मान ले, उसकी क्या गति होगी, सोच लो । एक पिक्चर का वह गाना आपको शायद याद ही होगा....

"राही मनवा दु:ख की चिन्ता क्यों सताती है, दु:ख तो अपना साथी है" –ऐसी गलत मान्यता रखने वाला कैसे सुखी हो सकता है? जो मनुष्य खुद अपने को सुधारना नहीं चाहता, उसे कोई नहीं सुधार सकता ।

ऋषि-महर्षिजन तो दु:ख को दु:ख समझते हैं, इतना ही नहीं, वे उत्तम सुख को भी दु:ख मानकर ईश्वर की ओर गतिमान होते हैं । हर समय ईश्वर को साथ रखने वाला ही आत्यंतिक सुख (मोक्ष) प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुख-दु:ख, मान-अपमान आदि में समत्व बुद्धि रखने वाला ही मुक्ति का आनन्द पा सकता है । जो मनुष्य अच्छे, भले, सेवा, परोपकार के कार्य भी निष्काम भाव से करता है अर्थात् परमात्मा प्राप्ति के लिए करता है वह मोक्ष का अधिकारी बनता है । विषयवस्तु में सुख ले लेकर जीनेवाला मनुष्य बन्धन से छूट नहीं सकता। अच्छे यज्ञीय कर्म भी नि:स्वार्थ भाव से करने चाहिए, क्योंकि वे मुक्ति दिलाने वाले होते हैं । अपने किये हुए दान-सेवा-परोपकार के कार्य भी बिल्कुल भूल जाए । ऐसी कहावत है न...."**नेकी कर और दरिया में डाल**" । सेवा-परोपकार के उत्तम कार्य करने के बाद भूल जाने में ही हमारा पूर्ण हित है।

यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का दूसरा मन्त्र भी निष्काम कर्म का महत्त्व बता रहा है ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(शेष पृष्ठ २७ पर)

ईश्वर प्राप्ति का उपाय पतञ्जलि प्रणीत यम-नियम

–प्रियांशु सेठ

मूर्तिपूजा अर्वाचीन है, वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध और अवैदिक है फिर हम अपने ईश्वर को कैसे प्राप्त करें ? हमारी उपासना-विधि क्या हो?

उपासना का अर्थ है समीपस्थ होना अथवा आत्मा का परमात्मा से मेल होना । महर्षि पतञ्जलि द्वारा वर्णित अष्टाङ्गयोग के आठ अङ्ग ब्रह्मरूपी सर्वोच्च सानु-शिखर पर चढ़ने के लिए आठ सीढ़ियाँ हैं ।

उनके नाम हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रतयाहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।

यहाँ प्रत्येक का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाता है–

१. यम पांच हैं–

(१) अहिंसा–अहिंसा का अर्थ केवल किसी की हत्या न करना ही नहीं अपितु मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार कष्ट न देना, किसी को हानि न पहुँचाना और किसी के प्रति वैरभाव न रखना अहिंसा है। उपासक को चाहिए कि किसी से वैर न रखे, सबसे प्रेम करे । उसकी आँखों में सबके लिए स्नेह और वाणी में माधुर्य हो । पशुओं को मारकर अथवा मरवाकर उनके मांस से अपने उदर को भरने वाले तीन काल में भी योगी नहीं बन सकते। साधक को प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक समय और प्रत्येक परिस्थिति में अहिंसाव्रती होना चाहिए । 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा परम धर्म है । अहिंसा का उद्देश्य है मनुष्य के अन्दर छिपी हुई उग्र, क्रूर और पाशविक वृत्तियों को जड़मूल से उखाड़ फेंकना। जब मन में हिंसा की छाया तक न दिख पड़े, तब समझना चाहिए कि अहिंसा की सिद्धि हो गई, अहिंसा का फल क्या है?

महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं–

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।

–योगदर्शन साधन० ३५

हृदय में अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर अहिंसक के समीप सांप, बाघ आदि हिंसक प्राणी भी वैरभाव का परित्याग कर देते हैं । अहिंसा की सिद्धि के बिना अन्य यमों की सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिए यमों में इसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है ।

(२) सत्य-सत्य द्वितीय यम है । साधक मन, वचन और कर्म से सत्य जाने, सत्य माने, सत्य बोले और सत्य ही लिखे, मिथ्या-असत्य न बोले, न मिथ्या व्यवहार ही करे । सत्यस्वरूप परमेश्वर को पाने के लिए साधक को सर्वथा सत्यनिष्ठा बनना होगा । सत्यस्वरूप प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए उपासक को सत्य में ही जीना होगा , सत्यस्वरूप ही बनना होगा और सत्य के प्रति आंशिक नहीं सम्पूर्ण तथा सर्वोपरि लगाव रखना होगा । साधना की नींव रखने के लिए सत्यव्रती बनना अत्यावश्यक है। सत्य सबसे बड़ा व्रत है।

उपासक कहता है–

अहमनृतात्सत्यमुपैमि । **–यजु० १/५**

मैं असत्य को त्याग कर जीवन में सत्य को ग्रहण करता हूँ ।

वेदादिशास्त्र सत्य की इस महिमा से भरे पड़े हैं ।

उपनिषदों में कहा है–

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा ।

–मुण्डको० ३/१/५

परमात्मा सत्य और तप से ही प्राप्त होता है।

सत्यमेव जयते नानृतम् ।

–मुण्डको० ३/१/६

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं।

महाभारत में कहा गया है–

सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्।

–महा० उद्यो० ३३/४७

सत्य स्वर्ग की सीढ़ी है ।

महर्षि मनु का कथन है–

नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।

–मनु० ८/८२

सत्य से बढ़कर कोई धर्म और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है ।

सत्यभाषण का फल बताते हुए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं–

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।

–यो०द० साधन० ३६

सत्य में प्रतिष्ठित होने पर व्यक्ति वाक्सिद्ध हो जाता है ।

सत्य के महत्त्व को समझकर जीवन में सत्य को धारण करो । सत्य में निवास करो । सत्य में मूर्त्तरूप बन जाओ । मन, वाणी और कर्म से सच्चे रहो ।

(३) अस्तेय–यमों में तीसरा यम है अस्तेय। स्तेय का अर्थ है चोरी करना, अस्तेय का अर्थ है मन, वचन और कर्म से चोरी न करना । साधक चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे । स्वामी की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ को न उठाये। स्तेयरूपी अवगुण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । व्यक्ति के लिए जितना आवश्यक है उससे अधिक पर अधिकार करने के लिए जो भी कार्य किया जाता है वह नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से चोरी ही है । आवश्यकता से अधिक खाना भी चोरी है । बस या रेल में टिकट न लेना और मेरे पास पास (Pass) अथवा 'सीजनल टिकट' है, ऐसा कहकर निकल जाना चोरी है । खोटा सिक्का चलाना अथवा दुकानदार द्वारा अज्ञान के कारण दिए गए अधिक धन को जेब में रख लेना भी चोरी है । उत्कोच (घूस) देकर काम बना लेना भी चोरी है । मनुष्य चोरी क्यों करता है ? चोरी का वास्तविक कारण मनुष्य की अनगिनत इच्छाएं और अनियन्त्रित इन्द्रियाँ हैं । चोरी से बचने के लिए साधक को अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित, इन्द्रियों को अनुशासित और मन को वश में करना होगा ।

अस्तेय की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं–

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥

–यो०द० साधन० ३७

मनुष्य के हृदय में अस्तेय की प्रतिष्ठा हो जाने पर उसके सामने संसार के सब रत्न स्वयमेव उपस्थित हो जाते हैं अर्थात् अस्तेय में प्रतिष्ठित व्यक्ति को कभी धन-रत्न का अभाव नहीं रहता।

(४) ब्रह्मचर्य–ब्रह्मचर्य दो शब्दों के मेल से बना है–ब्रह्म और चर्य । ब्रह्म का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य । चर्य का अर्थ है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण । इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ होगा–साधक ईश्वर का चिन्तन करे, ब्रह्म में विचरे, वेद का अध्ययन करे, ज्ञान का उपार्जन करे और वीर्य का रक्षण करे ।

ब्रह्म में विचरण के लिए मन का विषय-वासनाओं से सर्वथा मुक्त होना अत्यावश्यक है। विषय-वासनाओं में काम-वासना सबसे प्रबल और घातक है, अत: ब्रह्मचर्य का अर्थ प्रमुख रूप से वीर्यरक्षण किया जाता है । साधक जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो ।

ब्रह्मचर्य का उद्देश्य है–खाये हुए अन्न को ओज शक्ति में परिवर्तित कर देना है । ब्रह्मचर्य का अर्थ है–मनुष्य में विद्यमान पाशविक शक्तियों को संयमित करना, उनका संरक्षण करना, उन्हें उच्च स्तर की ओर उन्मुख करना और खाये हुए अन्न को ओजशक्ति में रूपान्तरित कर देना ।

ब्रह्मचर्य की महिमा महान् है । उपनिषदों में कहा गया है–

ना अयमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।

–मुण्डको० ३/२/४

ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता ।

साधक के लिए ब्रह्मचर्य उसी प्रकार आवश्यक है, जैसे विद्युत से चलने वाली गाड़ी के लिए विद्युत् । इसके बिना साधक योगमार्ग में उन्नति नहीं कर सकता । ब्रह्मचर्य की शक्ति द्वारा ही चंचल इन्द्रियों और कुटिल मन पर विजय पाई जा सकती है । वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा के सम्बन्ध में कहा गया है–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।

–अथर्व० ११/५/१९

ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा विद्वान् लोग मौत को भी मार भगाते हैं ।

महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं–

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

–यो०द० साधन० ३८

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर वीर्यलाभ होता है । अर्थात् ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठित व्यक्ति के देह में परमेश्वर की विमल ज्योति प्रकाशित होती है ।

उपस्थेन्द्रीय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए । आँखों के रूप में जाने से, कानों को शब्दों की ओर दौड़ लगाने से, नासिका को गन्ध की ओर भागने से, जिह्वा को रसपान से, त्वचा को स्पर्श-आनन्द में मग्न होने से रोको । सभी इन्द्रियों का निरोधरूपी ब्रह्मचर्य साधक को ब्रह्म-साक्षात्कार की ओर ले जाएगा।

(५) अपरिग्रह–अपरिग्रह का अर्थ है– आवश्यकता से अधिक पदार्थों का संग्रह न करना। साधक उतने ही पदार्थों का संग्रह करे जितने सादा जीवन के लिए आवश्यक है । किसी भी वस्तु को क्रय करने से पहले गम्भीरता पूर्वक सोच लो। यदि उनके बिना काम न चलता हो तभी खरीदो। पदार्थों के अधिक संग्रह से आज मानव दु:ख पा रहा है ।

विषयों के अर्जन, रक्षण, क्षय(नाश), सङ्ग (उपभोग), हिंसा (संग्रह में पर-पीड़ा) आदि दोषों को देखकर उनको स्वीकार न करना, उन्हें त्याग देना अपरिग्रह है ।

अपरिग्रह का एक अर्थ अभिमान न करना भी है । साधक विनम्र बने । वह निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे । विद्या, धन, जल, बल आदि जिन बातों पर मनुष्य अभिमान करता है, उनमें से एक भी ऐसी नहीं है, जिस पर अभिमान किया जाा सके । अपरिग्रह का फल क्या है?

महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं–

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता सम्बोधः ।

–यो०द० साधन० ३९

अपरिग्रह में प्रतिष्ठा-दृढ़ता होने पर पूर्वजन्म के कारणों का बोध होता है ।

ये पांच यम मिलकर उपासना-योग का प्रथम अङ्ग है ।

(..... क्रमश:)

स्मृतिशेष आचार्य ज्ञानेश्वर जी आर्य का वक्तव्य (पृष्ठ २४ का शेष)

क्रियाशीलता के साथ हे मनुष्य, तू सौ वर्ष तक जी । इससे भी अधिक जी, परन्तु यह दीर्घजीवन में तू ऐसे निष्काम कर्म कर जिससे तू जन्म-मरण के बन्धन में ना आए । कर्मों में कभी उलझना नहीं, उसमें ही रमण करना नहीं । कर्मों में फंसना तेरा स्वभाव नहीं है । सारे कर्म तू ऐसा कर जिससे तेरा जन्म ही न हो और मोक्ष को प्राप्त कर ले ।

कर्मशील और निष्काम सेवी मनुष्य ही, वास्तव में जीता है । अपने आत्मा को जो मारता नहीं, वही मनुष्य वास्तव में जीता है । वही मनुष्य कुशल है, जो दु:खों से छूटकर आनन्द सागर में डुबकी लगाकर अपना जीवन सार्थक कर लेता है । ऐसा उच्च महान् उद्देश्य के साथ हमें जीना चाहिए ।

दि० १७-६-२०१६ को आचार्य ज्ञानेश्वर जी आर्य ने वानप्रस्थ आश्रम, रोजड़ में वक्तव्य प्रस्तुत किया था, वह मैंने अपनी लेखनी से प्रकाशित किया है ।

प्रवचन के अन्तिम २० मिनट में पू० आचार्य जी ने कर्म के प्रकार –शुभ अशुभ कर्म, शरीर-मन-वाणी से पुण्य कर्म और पाप कर्म आदि बताए थे। बहुत लम्बा लेख बनने के डर से मैंने यहाँ लिखा नहीं है। पाठकगण अन्य स्थान पर देख लेंग। ❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०४/२०२१
भार- ४० ग्राम

अप्रैल 2021

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2021-23
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२१-२३
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2021-23

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा०.....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।